।।श्री ज्ञानेश्वरमाउली समर्थ।।

मधुराद्वैताचार्य प्रज्ञाचक्षु श्रीगुलाबराव महाराजकृत

सूक्तिरत्नावली एकोन्विंशति यष्टी

मनोहारिणी गीता

(भगवद्गीता सार : १२ प्रवचनानि)

(मूल हिंदी भाषा में)

प्रथम आवृति से

।। श्री ज्ञानेश्वरमाउली समर्थ ।।

*आज श्री महाराज के ७६ वे जन्म महोत्सव के अवसर पर यह **'मनोहारिणी'** टीका जनता के लिये हम प्रकाशित कर सके । हमारा हिन्दी भाषा का अध्ययन कोई पाठशाला में हुआ नहीं इस लिये कुछ मुद्रण दोष इस ग्रंथ के अंदर रह जाना संभवनीय है । उनके लिये मुझे क्षमा किजिये ।*

*श्री गुलाबराव महाराज (नव मास के आयु में) बालान्ध हुए थे और उनका सकल शास्त्र और समस्त भाषाओं का ज्ञान स्वयंभू था । हरदा-निवासी **मातोश्री सुंदरबाई केकरे** का निमित्त कर के उन्होंने यह ज्ञानगंगा मुमुक्षुओं के लिये प्रकट की है ।*

सद्गुरु गुलाबराव महाराज के मधुराद्वैत पीठ के द्वितीय आचार्य श्रीबाबाजीमहाराज पंडितजी (ज्ञानेशजासुत) ने इस ग्रंथ को प्रकाशित करने की आज्ञा हमें दी इस कृपा के लिये आजन्म ऋणी हूँ ।

विनीत,

कै.पुरुषोत्तम बळिराम मोहोड,

गुरुपौर्णिमा,

शके १८७८ / इ.स.१९५६

०००

''वैदर्भीय-हिंदी''

इस ग्रंथ की भाषा ''वैदर्भीय-हिंदी'' है ।
अतः भाषापर मराठी का प्रभाव होना स्वाभाविक है ।
यह ध्यान में रखकर यह ग्रंथ का अध्ययन हो यही अपेक्षा !

****

प्रथमावृत्ति इ.सन १९५६
द्वितीयावृत्ति इ.सन १९८१
तृतीयावृत्ति इ.सन २००७

मधुराद्वैताचार्य श्रीगुलाबरावमहाराजविरचित सूक्तिरत्नावली १९ वी यष्टी
(मूल - हिंदी)

मनोहारिणी

(समयोपदेश : १२ गीता-प्रवचन)

१

उपोद्घात्

॥ श्री ज्ञानेश्वर माउली समर्थ ॥

॥ दोहा ॥

अलकावतिपतिचरणको पुनि पुनि करी प्रणाम ।
रमणवचनभाषा करू मनोहारिणी नाम ॥१॥

वेदान्तक्रम बहोत प्रकारसे शुरू होता है । कोई 'अहं - इदं' प्रत्ययसे शुरू करते है; परंतु जो वेदान्तकों नहीं जानते तिनके वस्ते मैं सुगम मार्ग कहता हूँ।

सुगम वेदान्तक्रम

इस जगतमें समस्त जीवोंको दुःखके नाशकी इच्छा है । चीटीसे लेकर ब्रह्मापर्यंत दुःखके नाशकी इच्छा करते है । कोई भी जीव दुःखकी वांछा नही करता । पिपीलिकासे लेकर ब्रह्मापर्यंत सर्व जीव दुःखके नाशकी इच्छा करते है । वे दुःख तीन प्रकारके है । आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ।

(१) तहां **आध्यात्मिक दुःख,** जो अपनेसे उत्पन्न होता है तिसका नाम है । जैसे अपने शरीरमें वात, पित्त, कफादिक तिनसे उत्पन्न होनेहारे जो ज्वरादिक वे आध्यात्मिक दुःख है ।

यह आध्यात्मिक दुःख दो प्रकारका होता है । ***शारीरिक** और ***मानसिक** । तहाँ शारीरिक दुःख ज्वरादिकनतें होता है । अरु मानसिक दुःख अप्रिय पदार्थनके संयोगतें, अरु प्रिय पदार्थनके वियोगतें होता है । जैसे पुत्र आदिक जे प्रियबांधव उनके मरनेसे दुःख होता है और शत्रु आदिक जो अप्रिय है तिनके आवनेसे दुःख होता है । यह सब आध्यात्मिक दुःख है ।

अब **(२) आधिभौतिक** :- दुसरेको अधिष्ठान लेकरके मिलता है सो आधिभौतिक दुःख है । जैसे पाँवमें काँटा गडा; सर्पने कांटा, चोरने मारा,

व्याघ्रने खाया । वैसेही शस्त्र इत्यादिकनतें जे दुःख होते है ते संपूर्ण आधिभौतिक कहलाते है ।

(३) और अशनिपात याने बिजली गिरना, शीत अधिक होना, उष्णता अधिक होना, अनाज का पानी का दुष्काल गिर जाना, अत्यन्त ऊँदर उत्पन्न होना, सर्प, बिच्छू बहोत पैदा होना, अतिवृष्टि होना, इत्यादि सब दुःख देवनके किये हुये है ।

तैसेही मरनेके उपरान्त पापनतें नरक यातना होना; और पुण्यनतें स्वर्गभोग मिलना यह सब देवनके किये हुये है । तथा ग्रह, भूत, पिशाचनकी बाधा होना, यह सर्व **आधिदैविक** दुःख कहलाते है ।

उपर कहे हुये यह विविध दुःख सबको प्राप्त होते है । किसीको एकही जनम में कर्मफल देनेहारे होते है । जैसा जैसा कर्म तीव्र होता है वैसा वैसा फल होता है । इन सब दुःखनको कर्म हेतु है । जैसे जैसे कर्म होते है, तैसे तैसे सुखदुःख प्राप्त होते है ।

दुःख देनेहारा एक कर्महीं है और दुसरा कोईभी नहीं है, तब किसीने किसीका द्वेष नहीं करना ।

जैसे किसी पुरुषकों सर्पसे खेलनेका व्यसन है, तिसको जब तिस सर्पने कांटा तो उसकाही अपराध हुआ । दुसरेका क्या दोष है? तैसे संपूर्ण दुःख जो आवते है, वह अपनाही अपराध है; दैवादिकनका नहीं है । अथवा **जो पुरुष कोई व्यसनको लेता है तो पहले व्यसन उसके स्वाधीन हो जाता है, पश्चात् वह व्यसनके स्वाधीन हो जाता है ।**

तैसे पुरुष जब कर्मनके अत्यंत अधीन होता है, तबसे कर्म उसको सुख दुःख देते है । **कर्म करनेके वक्त स्वतंत्र रहता है, पर भोग कालमें परतंत्र होता है ।** तो अपनेको होनेहारे जे सुखदुःख है तिनविषे दुसरे को दोष नही देना चाहिये । अपनेही कर्मानुसार सुखदुःखादिक भोगता है । अध्यात्म रामायणनमें कहा है:

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता । परो ददातीति कुबुद्धिरेषा ।
अहं करोमीति वृथाभिमानः । स्वकर्मसूत्रैर्ग्रथितो हि लोकः ॥

इसका अर्थ यह है कि,सुख तथा दुःख देनेहारा दुसरा नहीं है । जब **दुसरा मुझको दुःख देता है ऐसा कोई पुरुष कहता है तब उसकी कुबद्धि**

समझना । मैं करता हूँ यह जो अभिमान है सो मिथ्या है । संपूर्ण लोक कर्मनतें बंधे है । तुलसीदास कहते है:-

कर्मप्रधान विश्वकरी राखा । जो जस करे तो तस फल चाखा ॥१॥

जिसका समीचीन कर्म है उसको सुख होता है और असमीचीन कर्म करता है उसको दुःख होता है । अपना नाश करनेहारा दुसरा कोई भी नहीं है । अपनही अपना पहिले नाश करते है । फिर देव उसके नाशमें प्रवृत्त होते है ।

जैसे कोई पुरुष चोरी करे तो चोरी को देखके ही राजा उसको शिक्षा देता है । जो चोरी नहीं करे तिसको राजा शिक्षा नहीं देता । तैसे देव भी कर्म देखि के उसका फल देते है । उनकी स्वयं, अपनेको त्रास देनेकी प्रवृत्ति नही है । अपनही अपना नाश कर लेते है ।

यह कर्म तीन प्रकारके होते है । पुण्य, पाप और मिश्र । तहाँ **पुण्य** कर्मनतें सुख होता है । **पाप** कर्मनतें दुःख होता है और **मिश्र** कर्मनतें सुखदुःख होवे है । पुण्यकर्मनतें देवयोनि मिलती है; पापकर्मनतें कृमि, कीट वृक्षादिक योनीमें आवते है । तब सुख और दुःख दोनोका भोग मिलता है । यह सब अज्ञानीका कहना है, परंतु विवेकी पुरुष जोही होते है, तिनको यह सब जगतही दुःख है । कैसे?- जगत्के जे सुख है ते सब दुःखही देनेहारे होते है ।

धन का दुःख

संसारमें धन सुखका मुख्य साधन कहते है । परंतु धन मिला तोभी दुःख, न मिला तोभी दुःख । दरिद्री जो होता है उसको धन नहिं मिलनेसे दुःख होता है । परंतु -

धन मिलने से बुद्धि पलट जाती है । और दंभ,मान और अहंकार बुद्धि को घेर लेते है और आशा याने अधिक धन मिलने की अभिलाषा बढती है ।

जिसके पास दो बैल होवे उसको चार मिलनेकी अभिलाषा होती है । चार है उसको भी अधिक मिलने की अभिलाषा होती है । जिसके पास बहोत धन है उसको राज्य मिलनेकी इच्छा होती है । राजा है उसको स्वर्ग मिलनेकी इच्छा होती है । तात्पर्यः- धनमें किसीकोभी समाधानी नहीं भई ।

जितना मिले उतनी अधिक अभिलाषा बढती है । धन लानेके समय कष्ट

होते है; रक्षणके समय चिन्ता होती है और व्यय होता है तबभी चिन्ता रहती है । धनके विषयमें पुत्रादिक और चोरादिकनसे चिन्ता होती है ।

अतः विवेकी पुरुष जो होते है वे अधिक धनकी इच्छा नहिं करते। जितना मिलता है तिसमें समाधानी मानते है और संतुष्ट रहते है ।

पुत्र दुःख

पुत्र भी इस संसारमें दुःख कों देनेहारा है । वंध्या स्त्रीको, मुझे वृद्धापकालमें कौन पालन करेगा? ऐसी चिंता रहती है । भला कदाचित् असत् पुत्र भया तो दसपट चिंता होती है । क्योंकि बंध्यापनसें कुपुत्र दसपट दुःख देता है । सत्पुत्र भया तो कल्याण होता है । परंतु दुःखकी अत्यंत निवृत्ति नही होती । क्यों कि सत्पुत्रसे स्वर्ग मिलता है । किंतु पुण्य समाप्त होनेपर फिर संसार में गिरनेका भय होता है । दुःखकी अत्यंत निवृत्ति मोक्षही से होती है । अरु मोक्ष ज्ञानके बिना कौनसे भी पदार्थसे मिलता नहिं है । तथापि सत्पुत्र जो कदाचित् ज्ञानी भया तो मातापिताको ज्ञानोपदेश करके मुक्त कर सकता है । त्रिविधताप कदाचित् भी उत्पन्न नहिं होना, तीन दुःखसे अत्यंत छूट जाना, मोक्षका नाम है । स्वर्ग मिलनेसे सुख नहिं होता है । पुण्य क्षीण हो जाने नंतर फिर संसार में आवता है । सत्पुत्र से मोक्ष नहिं मिलता है । सत्पुत्रसे भी अत्यंत सुख नहिं मिलता है।

माताके गर्भमें जब पुत्र रहता है, तब वह अन्न बराबर नहिं खाती है, प्रतिबंध होता है । बराबर पचन नहिं होता । प्रसूतिकालमें जो पुत्र मर गया, तब मातापिताको दुःख होता है । जो पुत्र गर्भमें रहा तो प्रसूतीके समय इतना दुःख देता है कि दुःखसे माताको शोकका प्रतिबंध होता है । तों भी मूर्ख लोगोंकी वासना घटती तो नहिं है, वरना दिन दिन बढती जाती है । जैसे मिरची खानेहारेके नाकमेंसे और आँखों में से पानी निकलता है, तब भी वे मिरची खाना नहिं छोडते है, तैसे मूर्ख लोक बिखयनके दुःखका अनुभव करनेपर भी फिर फिर संसारमें डूबा करते है । प्रसूतिकाल में पुत्र कदाचित् मर भी जाता है । उससे बच गया और अच्छे प्रकारसे जनन हुवा तो बचपनमें उसके रोगादिकनके कष्ट और मलमूत्रादिक निकारनेके कष्ट मातापिताको सहन करने पडते है । तरुनपनमें पुत्रकी चित्तवृत्ति यदि उसके स्त्रीके और रही तो माबापको वह दुःख देता है । गालीप्रदान करता है । कई वक्त मारनेको भी दौडता है । उससे दुःख

होवे है । माबापकी सेवामें उसकी प्रवृत्ति रही तोभी दुःखही होवे है । काहेतें? यह हमारा पुत्र मर तो नहिं जावेगा; मर गया तो बुढापेमें हमारा कौन पालन करेगा, ऐसी चिंता बनी रहती है । पुत्रकी प्रवृत्ति उसके स्त्रीके तरफ रही तो अपनेही स्त्रीका वह पालन करता है। अच्छा भोजन, वस्त्र, अलंकार उसीको देता है और मातापिताको बासी रोटी और जीर्ण वस्त्रादिक भी कष्टसे मिलते है और बारबार गाली देके ताडनभी करता है । सत्पुत्र भया और माता पिताके तरफ उसकी प्रवृत्ति रही तो वह उनकी आज्ञा पालन करता है और सेवा करके सुख देनेहारा होता है । वरन् सत्पुत्रसे भी अन्त में मातापिताको दुःखही होवे है। काहेतें ? अंतसमयमें पुत्रके तरफ उनका ध्यान रहता है । यदि अंतसमयमें माताका ध्यान पुत्रके तरफ रहा तो वह माता दुसरे जनम में उस पुत्रकी स्त्री होवे है । पुत्रके तरफ पिताका ध्यान मरनेके समयमें रहा तो वह पिता दुसरे जनममें उसका पुत्र होवे है । स्त्रीको अंतसमय में पति का ध्यान रहा तो वह दुसरे जनममें उसकी माता होवे है; और पुत्र पिता होवे है । माता, पिता, स्त्री, भाई, बहिन, यह संपूर्ण विचित्र जाल है, और संसारमें अनंत दुःखनको देवे है।

स्त्री-दुःख

स्त्रीभी वैसीही दुःख देनेहारी है । स्त्री मिली तब भी उससे दुःखही होता है, नहिं मिली तोभी दुःखही देती है । स्त्री नहिं मिली तो तरुनपन में पीडा होती है । दुसरी स्त्री के ओर चित्त कर्षण होता है । स्त्री दुर्भगा मिली तो फिर दुःखनको पार नहिं रहता है । स्त्री कुपात्र मिली तो गृह में हरघडी दुःख देवे है । बाहर नहिं गये तो वह कहती है, घरमें क्यों बैठे? घरमेंहि बैठनेसे कैसा होवेगा? घरमें अनाज नहिं है । और कंडे कौन लावेगा ? तरकारी काहे की बनाऊं ? ऐसा कहती है । बाहर गये और थोडीभी देर लगी तो शंका लेती है; और कहती है; 'इतनी देर क्यौं लगी? कौनके पास बैठे थे? तुम्हारी कोई सखी होवेगी । फिर स्नान को गरम पानीभी नहिं मिलता । कुपात्र स्त्री ऐसी दुःख देनेहारी होती है। भला स्त्री सत्पात्र मिली तो कुपात्रसेभी अधिक दुःख देवे है । काहेतें? कुपात्र स्त्री पुरुष कों वैराग्य उत्पन्न करे है । उससे परमार्थ के तरफ प्रवृत्ति होती है परंतु सत्पात्र स्त्री होवे तो अपनेही तरफ पतीका चित्त कर्षण करती है, याने खींच लेती है । तातें चित्तको वैराग्य नहिं होता है। सत्पात्र स्त्री

देवधर्मके उपरभी पतीका चित्त जाने नहिं देती है । मातापिता के उपरके प्रेमको खींच लेती है । यद्यपि, वह मातापिता की सेवा करे तो पतीको अपने वश में रखके सेवा करती है और पतीसे भी अपने इच्छानुसार बंदरके नाई मातापिताकी सेवा करावे है ।

पत्नीके इच्छासे धर्म किया उसका फल पतीको नही मिलता है । काहेंतें? वह पति स्त्री के कहने के वास्ते बंधनसे धर्म करता है । स्वतंत्रता से करता नही । स्वतंत्र जो जो धर्म करे उसको ही धर्मका फल मिलता है । यह पुरुष तो सत्पात्र स्त्रीके अधीन व्हयके धर्म करता है । इस वास्ते उसकी मूढता उसको धर्मका फल देवे नही ।

सारांश :- स्त्री दुःख ही देनेहारी है । और परस्त्री तो सर्वथा दुःखदायी है । परस्त्री जो वेश्या होवे तो धनादिकनका अपहार करे है, घरमें कलह लगावे है और धन बहोत हुवा तो अपने जारको विष भी देवे है । परस्त्री कुलांगना होवे और जारिणी होवे तो उसके विरुद्ध जानेसे पतिपुत्र को कलह से नाश कर देवे है । परस्त्री पतिव्रता रही तो शाप देके नष्ट कर देवे है । एवं परस्त्री में कामना करनेसे भी दुःख होवे है और न करने से भी दुःख होवे है । काहेते? उसके साथ भाषण करनेसे संशय होवे है । परस्त्री दुष्ट इच्छासे जैसा दुःख देवे है; वैसे परस्त्री को माता कहनेसेभी दुःख होवे है, यह मेरा अनुभव प्रमाण है । मतलब इस लोक के संपूर्ण पदार्थ दुःख देनेहारे है ।

जैसा इस लोकमें दुःख है वैसा परलोक में (स्वर्ग) भी दुःख है ।

स्वर्गदुःख

दृष्टांत - जैसे कोई एक पुरुषनें अच्छे मधुर मधुर पदार्थ लड्डू, श्रीखंड, बासौंधी वगैरे बनावनेके वास्ते घरमें सामुग्री लाई और रसोई तयार होनेपर जब खानेको बैठा तो बासी रोटी और बेसन थालीमें परोसके सामने लाया, तो ऐसा समझना चाहिये कि उस सामुग्रीका कुछ तोभी भया । वैसे स्वर्गके वास्ते यज्ञ में ब्रह्मचर्यको धारण करनेसे, यज्ञ में घृतादिक बहोतसा द्रव्य अर्पण करनेसे, दान करने से, जो पुण्यसंचय होता है; उसका यथार्थ फल स्वर्गभोग नही है । जैसा श्रीखंड, जिलेबी, आदिक अच्छा खाना बनानेके वास्ते सामुग्री लाई और भोजनके समय बासी रोटी और बेसन मिला तैसा यज्ञमें जो ब्रह्मचर्य धारण

किया और दान किया यह स्वर्गके वास्ते जो पुण्य कमाया उसका फल क्या मिला? तो उच्छिष्ट रंभा आदिक अप्सराओंका (वेश्या) भोग ।

स्वर्ग के यह संपूर्ण भोग, भ्रांतिजीवित है । तिनकरिके चित्त की शुद्धि नही होती है । **कामना न करिकें जो पुण्य करते है, तिस पुण्यनतें चित्तशुद्धि होती है।**

स्वर्गमें अपनेसे उपरके स्थानमें जो बैठते है उनकी ईर्षा होवे है । जो अपनसे नीचे स्थान में है उनको देखकरिके अभिमान होवे है । और जो अपने बरोबरीसे बैठते है उनसे कलह होवे है । ऐसी खटखट इस भूलोक के समान स्वर्गमें भी चलती है ।

जैसा किसी आदमी के पेटमें कृमि भये है और तातें उसको सन्निपात भया, सन्निपात में उसकी तृषा बढनेसे वह पानी पानी करता है, उस समय उसके मुखमें पानीका एक बूंद पडनेसे उसको जितना सुख है उतनाही सुख इस संसारमें है। सन्निपाती आदमीको पानी देनेसे जैसा उसको सुख नहिं होता है, वरन् तृषा अधिक बढने से दुःखही होवे है, तिसपरभी जबतक पानी मूँहमें है, तबतक यह आदमी जैसा सुख मानता है; वैसेही संसारी जन विषयमें सुख मानते है ।

तात्पर्य :- इस लोक में जितने दुःख है उतनेही दुःख स्वर्गमें भी है । इस लोकमें मातापिता जैसे प्रेम करते है, वैसे स्वर्ग लोक में इसपर कोई भी प्रेम नहिं करता है । उलटा यही भोग के उपर प्रेम करता है, और पुण्य समाप्त होनेके अनंतर वहाँसे फिर नीचे ढार देते है । ऐसा यह संपूर्ण जग इंद्रजाल है । स्वर्गादिकनमें सुख नहिं है, किन्तु स्वर्ग पुण्यका फल है, ऐसी भ्रांति होवे है ।

अपने को सुख का देनेहारा कोई भी नही है । यह संपूर्ण जग मायामय है। स्वर्ग, नरक, वैकुंठ, कैलास, ये सब अज्ञान है तबतक सत्य भासते है; वरन् यथार्थ करिके दुःखही देने हारे है । यह प्राणी जहाँ जहाँ विषय भोगनकी इच्छा करिके जाता है; तहाँ तहाँ ब्रह्मलोक वैकुंठ लोकमें भी उसको दुःखही होवे है ।

तात्पर्य :- विषयनकी अभिलाषा न करे तो श्वानभी अच्छा है; किन्तु विषयनकी इच्छा करनेहारा विष्णुभी तुच्छ है । काहे तें विषयनकी इच्छा न करनेहारा श्वान समाधानी होवे है ओर बिखयनकी इच्छा करनेहारा विष्णु बिखयनके ओर दीन और परतंत्र व्हयके दुःखी होवे है । इस वास्ते विषयही दुःख देने हारे है । वे संपूर्ण दुःख अपनी वासनातें होते है । वासना नही रही तो दुःख नही है ।

अपने आत्मस्वरूपको नही जाननेसे वासना होती है । वासना अविद्या से उत्पन्न होती है । यह अविद्याकी निवृत्ति ज्ञानसे होती है । ''मैं देह हूँ'' यह अविद्या है । ''मै देह हूँ'' ऐसी भ्रांति करिके दुःख होवे है । उस अविद्याका ज्ञानसे ही नाश होवे है । सो ज्ञान वेदनके वाक्यकरी होवे है । परमात्माने कृपा करिके जीवको ज्ञान होनेके वास्ते बेद निर्माण करे है । वह परमात्मा स्वयं ज्ञानी है । वेदनके तीन कांड है ।

उसमें **कर्मकांड** चित्तशुद्धि देनेहारा है ।

उपासनाकांड चित्त स्थिर करने हारा है ।

और **ज्ञानकांड** मुक्ति देनेहारा है ।

ज्ञानकांडमें समस्त **उपनिषत्** भाग है । इस उपनिषत् भागमें कितनी श्रुतियां परस्पर विरोधी है । यह विरोध मिटानेके वास्ते **सूत्र** बनाये गये है । तिन् सूत्रनमें भी वाद होनेतें भगवाननें **गीता** बनाई है ।

गीताका प्रसंग ऐसा है कि महाभारतके युद्ध में अर्जुनको मोह भया था कि ये मेरे स्वजन है । मै अर्जुन हूँ । इनको मारना पाप है, ऐसा मोह भया था । तिसके निवृत्तीके वास्ते, गीता बनाई है । यह गीताका उपोद्घात हुआ । गीताके प्रथम श्लोक का आरंभ कल करूंगा ।

। हरिः ॐ तत्सत् ।

॥ श्रीमत्सद्गुरु ज्ञानेश्वरमहाराजार्पणमस्तु ॥

०००

२

गीता का प्रारंभ

॥ श्री ज्ञानेश्वरमाउली समर्थ ॥

उपनिषद्भागमें कितनी श्रुतियाँ हिरण्यगर्भ को जीवधर्म कहनेवाली है, और कितनी श्रुतियां हिरण्यगर्भको ईश्वरधर्म कहनेवाली है । कितनी श्रुतियां दहरको श्रेष्ठ कहती है और कितनी श्रुतियां प्राणको श्रेष्ठ कहती है । कितनी श्रुतियां समस्त सूक्ष्म स्थूल भूतोंको श्रेष्ठ कहनेवाली है ।

श्रुतयः-

(१) **''हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिर्येक आसीत् ॥''**

इत्यादि श्रुतियां हिरण्यगर्भको श्रेष्ठ माने है । **(ऋग्वेद)**

(२) **''यच्छोत्रस्य श्रोत्रं...''**

इयं तलवकार श्रुति समस्त उपासनाको तुच्छ करे है ।

(३) **''द्वा सुपर्णा सयुजा...'' (मुंडक. ३३-१-१)**

इस श्रुति का अर्थ ऐसा है कि दो पक्षी इस संसार वृक्ष को आलिंगन करते भये। एक पक्षी स्वादु तथा अस्वादु फलों को भक्षण करे । दुसरा भक्षण करे नही ।

(४) **''य आत्मनि तिष्ठन् ...'' (बृहदारण्य ७३-७-९)**

यह बृहदारण्यक श्रुति अद्वैतको प्रतिपादन करे है । इन श्रुतियों में मूढ पुरुषोंको विरोध भासता है । भगवान् सूत्रकारने सूत्र बनायके समस्त विरोधनका परिहार किया है । इस शास्त्रके चार अध्याय है ।

प्रथमाध्याय जो है, उसको **समन्वयाध्याय** कहते है। प्रथमाध्याय के प्रथम पादमें सुस्पष्ट वाक्यनके विरोधका निराकरण कऱ्या है । दुसरे पाद में अस्पष्ट वाक्यनके विरोधनका निराकरण कऱ्या है । तिसरे पादमें ज्ञेय वाक्यनके विरोधका निराकरण कऱ्या है । और चौथे पादमें संदिग्ध वाक्यनके विरोधका निराकरण कऱ्या है ।

दुसरे अध्यायका नाम **''श्रुतिअविरोध''** है । (वेदान्त समन्वय) दुसरे अध्यायके प्रथम पादमें सांख्ययोगादिस्मृति और तर्क इनका विरोधपरिहार, द्वितीय पादमें तर्कनकरिके सांख्यादिमतोंका दुष्टत्वप्रदर्शन ।

तृतीय पादमें पूर्वभागसे इंद्रियनके और चौथे पादमें प्राणनके उत्पत्तिका विचार और समस्त तिसरे अध्यायका नाम साधनपाद है । तिसरे अध्यायके प्रथम पादमें पंचाग्निविद्या कही है । पापीलोक और पुण्यलोक इनका गत्यागति, चिन्ता, वैराग्यनिरूपणविचार । दुसरे पादमें तत्त्वंपदका शोधन किया है । तिसरे पादमें गुणोपसंहार किया है । चौथे पादमें निर्गुणविद्याका वर्णन है ।

चौथा अध्याय **फलाध्याय** है । चौथे अध्यायके प्रथम पादमें मरणकी गति और उत्क्रांतिका विचार किया है । दुसरे पादमें निर्गुणविद्या जाननेहारेकी गतिका विचार किया है । तिसरे पादमें सगुणविद्या जाननेहारेकी बह्मलोकमें गति होवे है तिसका विचार किया है और चौथे पादमें उपसंहार है ।

यह शास्त्र अत्यंत दुस्तर है, और जगतमें जितने धर्म, शास्त्र और युक्तियां है तिन समस्तनका मुख बंद करनेके वास्ते यह शास्त्र प्रबल है । इसका खंडन करनेहारा अब तक कोई हुवा नही । पंडितलोग ऊपरी ऊपरी इसमें किंचिन्मात्र विरोध निकारे है, परंतु यथार्थ खंडन करनेहारा विद्वान कोई भया नही । इस शास्त्रमें कपिलादिकनके मत खंडन किये है। फिर उन्होंने सांख्यसूत्र नही बनाये तथापि यह शास्त्र मुमुक्षुओंको दुस्तर है ।

गीता शास्त्र का निर्माण

इसमें परमत खंडन करनेके वास्ते कही कही वितंडा करी है । इस वास्ते अत्यंत मुमुक्षुको इस शास्त्रसे बोध नहिं होता । काहे तै? वह विवादको नहिं सहता । उसको ज्ञानकी ही अभिलाषा रहती है । तिस वास्ते श्री भगवानने यह गीता शास्त्र बनाया है । व्यासजीने भारतके मध्यमें गीताको ग्रथित किये है ।

विरोध-परिहारसूत्रों की आवश्यकता

यह गीताशास्त्र सूत्रसे भी दुस्तर भया है । इसमें श्रुतिके समस्त ही विरोध दिखते है । फिर इन विरोधन का परिहार करनेवास्ते किसी आचार्यको सूत्र बनाना चाहिये ऐसा प्रसंग दिखता है । इस गीताशास्त्रमें वैदिक और कपिल मतोंका समन्वय कऱ्या है । गीताका विषय ब्रह्म है । ब्रह्मज्ञानमें चित्त लगाना बडा कठिन है । संन्यासीके बिना ब्रह्मज्ञानका अधिकार किसीको कह्या नहिं । जनकादिक को इतिहासकरी यद्यपि ब्रह्मज्ञानका अधिकार कह्या है, सौ भी कर्मन करिके चित्तशुद्धि होने के उपरांत वह अधिकार उनको प्राप्त भया है ।

गीतामें जो ब्रह्मज्ञान कहा है वह युद्धके विषय खडा हुआ अर्जुनको मोह भया था, उसका निराकरण करने वास्ते कहा है। अर्जुन मोहवश व्हयके युद्धसे निवृत्त होनेतें राज्यसे भ्रष्ट होनेहारा भया था। ऐसे अर्जुनको गीता कही है। ऐसी यह गीता संपूर्ण जगतको ज्ञान देनेहारी माता है। इसपर जितनी टीका संस्कृत और मराठी हुई उतनी (हजार दश हजार) टीका वेदपर भी नहीं भयी। भिन्न भिन्न टीकाओंमें भिन्न भिन्न कल्पना देखी जाती है।

गीता माता की करुणा

यह गीताशास्त्र इतना भी कठीन है तथापि गंगा जैसी तृषाक्रांत पुरुषकों फिराय नहिं देती हैं अथवा धेनु वत्सको मारनेको नहिं दौडती है, तैसी **यह गीतामाता मुमुक्षु पुरुषकों फेरि नहिं देवे है।**

यह सब टीकाकारोने किया हुवा अर्थ यथार्थ है वा अयथार्थ है यह निश्चय मुमुक्षुको नहिं होता है। इसवास्ते आत्माका यथार्थ स्वरूप अनुभव, श्रुति और युक्तीसे निर्णय करना चाहिये। तैसाहि अर्थ मुमुक्षुके वास्ते श्री समर्थ ज्ञानेश्वर महाराजने किया है। यह प्रस्तावना भयी।

गीता के **प्रथम अध्याय** में अर्जुन के मोह का वर्णन है। अपने समस्त बांधव देखकर अर्जुनको मोह भया कि, - ''इस युद्धमें मेरे पिता, पुत्र, बंधु, आप्त, स्वजन उभयपक्षमें युद्धके वास्ते खडे हुये है, तैसे भीष्म, द्रोणादिक मेरे गुरुजन जिनकी मैं पूजा करूं, वे भी आयके खडे हुये। यदि इनको मैं मार डालूं तो ये मर जायेंगे, इसकी अपेक्षा मैं भिक्षा मांगके रहूं वरन यह भयंकर पाप करना समीचीन नहीं,'' ऐसा कहके चाप और बाण छोडिके खडा रहा; और शोकाकुल व्हयके नेत्रसे अश्रुधारा निकलने लगी। यह प्रथम अध्याय का विषय हुवा।

फिर **दुसरे अध्याय** में जिनके नेत्रनसे अश्रुधारा चली है ऐसे अर्जुनका शंकासे पीडित होना वर्णन किया है। अर्जुन कहने लगा :- ''यदि मै समस्त बांधवों को मार डालूंगा, तो उनकी समस्त स्त्रियाँ विधवा दशा को प्राप्त होवेगी और युधिष्ठिर भी प्रकोप दशा को प्राप्त होवेंगे। और वह राज्य को नहीं लेवेंगे।'' ऐसे अनंत शंकासे अर्जुन जब पीडित भया, तब वह श्रीकृष्णसे कहता भया कि, ''उन बंधुजनको मारना उचित नहीं है; वैसाहि द्रोणादिक जो गुरु है जिनकी हमने पूजा करना चाहिये उनको कैसा मारना? उनको मारनेसे प्रबल

पाप होवेगा और भयानक नरक होवेगा। मित्र का द्रोह करनेसे पातक होता है। पातकसे अधर्म होता है। अधर्मसे धर्मका लोप होवे है। धर्मका लोप होनेसे कुलस्त्रियाँ दूषित होवे है। कुलस्त्रियाँ दूषित होनेसे वर्णका संकर होवे है। संकर होनेसे पितर नरकको जावे है और पिण्डोदक क्रिया लुप्त होवे है। यह महत्पाप मै अपने सिरपर काहेको लेवूं।''

तथा अर्जुन फिर कहता भया, ''हे नाथ! पूजायोग्य जे भीष्मद्रोणादिक इनको मारके मेरे को किस अर्थकी प्राप्ति होवेगी!'' यह द्वितीय अध्यायका प्रस्ताव हुवा।

अर्जुन कहता भया कि, ''यह द्रोणादिक दुर्योधनके अन्नबद्ध व्हयके युद्ध करनेको खडे है। तिनके उपर शस्त्रधाराका वर्षाव करना धर्मकी बात नहीं है। हे भगवान! छुटपनमें जिसने मेरेको गोद में लेकरके प्यार किया, उन भीष्म को मैं जब पिता कहता था, तब भीष्मने कुतुहलसे कहना- मै तेरा पिता नहीं हूँ। तेरे पिताका पिता हूँ। तिस भीष्मके उपर शस्त्र डारना धर्मकी प्रतीति नही है। हे भगवान् यद्यपि ऐसी स्मृति है कि

''आततायिनं आयान्तं अपि वेदान्तपारगम्।
जिघांसन्तं जिघांसीयात् न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥१॥

याने वेदान्त पारंगत पुरुष भी भया और वह हातमें शस्त्र लेके मारनेको आया होय तब तिसको मारनेसे पातक नहिं होवे है। ऐसी यद्यपि स्मृति है; परंतु ''हे भगवन् इयं स्मृति यह शास्त्रकी नहिं है, अर्थशास्त्र की है। स्वार्थ के वास्ते बनाई हैं। स्वार्थ से धर्म बलवान होवे है। धर्ममें इनकी पूजाही करना लिखी है। जो सब लोग दुर्योधन के तरफ से खडे है वे आततायी नही है। तिनका वध करना अनुचित है और हे भगवन् ! उन गुरुवोंको मारके राज्यकी प्राप्ति तुच्छ है। तिसकरी परलोकमें दुःखही होवेगा। तूं भी हमारे हातमेसे जावेगा। यह संपूर्ण बांधव मर गये तो हमने जीता रहना अच्छा जीना नही है। इस वास्ते मैं संन्यास लेके भिक्षा मांगू।''

इतना कहके अर्जुन स्थित हुवा। यह उसका सब मूढता का जाल देख करिके भगवान् बोलते नहिं भये। तिसपर अर्जुन शंकित भया और भगवानके मुखके तरफ देखने लगा कि धर्म भी भगवानको क्यों नहिं प्रिय लगा। ऐसी शंका

करिके फिर कहता भया, हे भगवन्!

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥७-२॥

कृपणता करिके मैं अभिभूत भया हूँ । मेरे मनसे जो धर्म था सो मैंने कह्या। तुम्हारे मनसे जो यथार्थ मार्ग होवे सो कहिये?''

यह प्रश्न सुनिके फिर भगवान् उत्तर देते भये । काहेतें?

प्रश्न किये बिना गुरूनें उत्तर नहिं देना चाहिये । शिष्य के पुछे बिना कहनेसे अनादर होता है । शिष्यकों मोक्ष नहिं होता ।

तिस वास्ते अर्जुनका प्रश्न सुनिके भगवानने हास्यमुख करिके एकदम वेदान्तसे शुरुवात करी । कहते भयेः- ''हे अर्जुन तेरी बातें सुनकर मेरेको आश्चर्य होता है । मैं नहिं जानता था कि तूं इतना मूढ है । इस जगतमें क्या तूंही एक धर्म करनेहारा है? तेरे से वरिष्ठ भीष्मादिक जो है वे क्या मूढ है? भला, कदाचित् तूंही धर्म जानता होवे तो तूनें शंकरसे काहेको युद्ध किया? और अब मोहवश व्हयके युद्ध नहिं करता तो क्या तूं काल से पूछके आया है कि यह संपूर्ण लोग हमेशा के वास्ते जीते रहेंगे? युद्ध करना क्षत्रियका काम है । लाभ होनेसे हर्ष नहिं मानना और अपजयमें दुःख नहिं मानना । तूं काष्ठकी पुतली समान युद्ध कर । तब तेरेको जयापजय में सुख दुःख नहिं होवेगा और पाप नहिं होवेगा । यह युद्ध राज्य मिलानेके वास्ते नहिं है परंतु उत्तम जन पालनेके वास्ते है । क्षत्रिय धर्म शास्त्रमें ऐसाही निर्माण किया है ।

क्षत्रियाणां अयं धर्मो विधात्रा परिनिर्मितः ।
भ्रातरं अपि हन्यात् यदि युद्धे समागतम् ॥१॥

बंधूने बंधूको भी यदि युद्धमें आवे तो मारना चाहिये । युद्धमें मर गया तो स्वर्ग मिलेगा और बचेगा तो राज्य मिलेगा । दोऊ पक्षनमें हितही होवेगा।''

धर्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान

यहां आगेका अर्थ मैंने प्रथमहि कह दिया है । क्यों कि -
धर्मका ज्ञान प्रथम होना चाहिये और ब्रह्मज्ञान पीछेसे होना चाहिये ।

इस गीता शास्त्रमें ब्रह्मज्ञान आगे कह्या है । **ब्रह्मज्ञान होने पर धर्मका प्रयोजन रहता नहिं ।** जैसे दिनमें प्रकाश होनेसे और रात्रिके समय अंधकार होनेसे आकाश ज्यौंका त्यौं रहता है; तैसे ब्रह्मज्ञानी पुरुषको पाप-पुण्यनकी बाधा होती नहिं है । इस वास्ते उनको धर्मज्ञान का उपयोग नहिं । इस वास्ते मैंने आगेका अर्थ प्रथमही कहा ।

श्री भगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पंडिताः ॥११॥ गीताअ.२

भगवान अर्जुनको वेदांत कहते भयेः- हे पार्थ ! अब तक तूं बुद्धिवाद करता था और मेरेको तूं पंडित भासता था । यद्यपि तूं शब्दपांडित्य बहोत करता है, तथापि मेरेको मूर्खहि दिखता है । काहे ते? जो पंडित होते है, वे गये पदार्थनके वास्ते, तथा नहीं गये पदार्थनके वास्ते, शोक को प्राप्त नहिं होते । शोक करना मूर्खता है । जो वस्तु गयी और फेरि मिलती नहिं तिसके वास्ते शोक करना चाहिये परंतु तेरेको शोक करनेका अवसर नहिं है ।

काहे ते? जो तूं इस आत्मन्के विषे शोक करता है तो आत्मा मरता नहिं है । जो देहको आत्मा माननेहारे है वे मूढ पुरुष है । जो देहको आत्मा माने और मार भी डारे तो वह देह पेटी में भरके थोडाही रहेगा । और देहको आत्मा नहिं मानके आत्मा देहसे पृथक् है और अमर है ऐसा तूं मानता है तो वह आत्मा तेरे भी हृदयमें है । अपने अपने वास्ते कोई कदापि शोकभूत नहिं होता है और जो कदाचित तूं देहको आत्मा मानता है तो बहुतही मूर्ख दिखता है ।

काहे ते ? देहको आत्मा मानिके अपने स्वजनों के वास्ते तूं जैसा शोक करता है, तैसे देहको आत्मा माननेहारे दुर्योधनादिक तेरे विषे शोक नहिं करते । देहको आत्मा माननेहाराही संसारको सत्य माने है, उसीके मत्थे सब पाप गिरते है । बल करिके मैं देह हूँ ऐसे कहते है तिनके माथा कोटि ब्रह्महत्या पडती है । तुकाराम महाराज कहते हैः-

''बळे देह मी म्हणतां । कोटि ब्रह्महत्या माथां''

और ऐसा क्यों? सब पाप, पुरुष जो करता है, तो काहेको करता है? व्यर्थ पाप कोई नहिं करता है । पाप जो करता है सो सुखके इच्छासे करता है । देहसे भिन्न आत्मा है ऐसा ज्ञान होवे तो पाप नहिं करेगा । मरने उपरांत सुख होनेके वास्ते पुण्यहि करेगा । देह गयेके उपरांत कोई पदार्थ रहता नहिं । बलपूर्वक जो मिले सो अच्छे अच्छे भोग मिलाना, खाना पीना मजा मारना, इस बुद्धिसेहि सब पापनकी प्रवृत्ति होती है । और जिस पुरुषकी ऐसी प्रवृत्ति होती है सो अत्यंत देहासक्त होता है । और अत्यंत देहासक्त जे है उनको विपरीत ज्ञान होता है और वे देहके वियोगतें शोकवान् होते हैं । वे लोक कहते है मेरे पुत्रादिक मर गये तो पश्चात् नहिं मिलेंगे । काहेके नहिं मिलेंगे? जो मरता है तिसका फिर कछु नहिं रहता है । इस वास्ते मूढ पुरुष शोकवान् होते है ।

भगवान् कहते भये, हे अर्जुन! तूं तो पंडितवाद करता है । तेरेको शोक करना असमीचीन है । फेरि भगवान् कहते भये :- देहतें आत्मा भिन्न है यह बात बिना श्रीगुरुके तथा शास्त्रनके बचन, नहिं जानें जाती । आप्तनके मुखतें शास्त्र श्रवण करना चाहिये । आप्तका नाम - जो यथार्थ वक्ता है और हित भाषण करनेहारा अथवा केवल हित भाषण करनेहारा आप्त नहिं होवे है ।

काहे तें? शत्रु भी यथार्थ भाषण करता है तों वह भी आप्त होवेगा; इस वास्ते **सत्यवादी और हितवादी आप्त होवे है ।** तिस आप्तनमे अनुमान प्रमाण है । जो झूठा भाषण करे तो वह आप्त नहिं होवे है । जो यथार्थ आप्त है याने गुरु, साधु पुरुष झूठा भाषण नहिं करे है । **जिसको थोडी भी इच्छा रहे सो झूठा भाषण करता है ।** जैसे कोई एक पुरुषके घरके माँ, बाप, भाई, बहेन, लडके, औरत सब प्लेगसे मर गये, गांव में उसकी पत भी नही रही । शरीर भी जराग्रस्त याने वृद्ध हो गया, ऐसे पुरुष कहेगा - ''मै किस संसार के वास्ते झूठा बोलूं ।''

तों जिन पुरुषोने अपने इच्छासे सब त्याग दिया है वे काहेको झूठा बोलेंगे । ऐस यथार्थ और हितवादी जो व्यासादिक आप्त तिनके मुखसे, हे अर्जुन! तूने वेदांत श्रवण किया है । तेरेको शोक करना अनुचित है ।

जिस पुरुषका आप्त वचनपर विश्वास नहिं है, वे पुरुष आत्मज्ञानको नहीं

प्राप्त होवे है ।

जहाँतक बालक है तबतक मातापर विश्वासही करना चाहिये । यह मेरी माता मेरेको विष तो नहिं देवेगी? ऐसी शंका यदि बालक करे तो उसको शंका विषकी बाधा व्हायके उसके प्राण निकर आवेंगे । तैसेहि मुमुक्षु पुरुषने आप्त, शास्त्र और अपने गुरु इनपर विश्वास रखना चाहिये । ज्ञान होनेपर गुरु और शिष्यमें भेदभाव नहिं रहता है । वरन् जबतक आत्मज्ञान नहिं होवे तब तक आप्तवाक्य में शंका करनेसे हित नहिं होवेगा । पंचतंत्रमें एक श्लोक है:-

''शंकाभिः सर्वमाक्रान्तं अन्नं पानं च भूतले ।
प्रवृत्तिः कुत्रकर्तव्या जीवितव्यं कथं नु वा ॥''

यदि पुरुष संपूर्ण पदार्थनमें शंकाखोर होवे तो उसका जीवन, जीवन भी नहिं होवे है । अपनेको तृषा लगी और अच्छा पानी पीनेको लाया तो उसमें 'जर्म'(जंतू) तो नहीं होवेंगे, किसने विष तो नहिं मिलाया होवेगा, सर्प तो नहीं थूका होवेगा? ऐसी शंका नहिं करना ।

संसारी : आप्त नही

आप्तपर विश्वास ही रखना चाहिये, परंतु संसारमें अपने उपर प्रेम रखनेहारे वे आप्त नहीं होवे है । इतने माता, पिता, बंधु, श्वसुरादिक जो है इनमें स्वार्थकी अभिलाषा है । अपने स्वार्थ बुद्धिसे वे यथार्थ परोपकार नहीं करतें है । इस वास्ते वे आप्त नहीं है । अपनेपर स्वजन कोई भी प्रेम नहीं करते है । सबको आत्माही प्रिय है ।

पति अपनेही वास्ते स्त्रीपर प्रेम करता है; स्त्रीके वास्ते स्त्रीपर प्रेम नहीं करता; अगर वह स्त्रीके वास्तेही स्त्रीपर प्रेम करता तो जारिणी स्त्रीपर भी प्रेम करना, वैसा नहीं करता ।

तथा स्त्रियां भी अपनेही वास्ते पतिपर प्रेम करती है; पतिके वास्तेही पतिपर प्रेम नहीं करती है । पतिके वास्तेही प्रेम करे तो दुसरे स्त्रीपर सापत्नभाव नहीं होना।

पुत्र जो पिताके ऊपर प्रेम करे तो अपनेही वास्ते है । ऋण करनेहारे पिताके उपर उसको द्वेष होवे है, और पिता भी पुत्रपर जो प्रेम करता है तो यह पुत्र वृद्धपन में मेरेको सुख देवेगा । इस वास्ते प्रेम करता है ।

आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति ॥

तात्पर्य :- यह संपूर्ण जगत् अपने ही वास्ते दुसरे पर प्रेम करते है; इस वास्ते वे आप्त नहीं होवे है ।

केवल परोकारी साधु पुरुषही दुसरेको संसारतें निकारने वास्ते प्रेम करे है; वेही यथार्थ आप्त हैं, और पुरुष आप्त नहीं होवे है । सो भगवान् कहते भये,-

''हे पार्थ! जो तूं महापुरुष व्यासादिकनके उपर विश्वास नाहीं रखके शोकको प्राप्त हुवा है तो तूं मूर्ख है । पंडित लोक गये पदार्थ या रहे पदार्थनके उपर प्रेम नहीं करते । क्योंकि जगतमें रहनेहारा पदार्थ एक भी नहीं है । अपनेको हर्ष तथा शोक को देनेहारा पदार्थ नहीं है । कोई भी पदार्थ अपनेको सुख-दुःख देवे नहीं । अपनही अपने सुख-दुःख को कारण होवे है ।

जिसपर अपना प्रेम है उसके दूर जानेसे द्वेष होवे है,जैसा पुत्र । जिसका द्वेष है वह मिलनेसे द्वेष होवे है - जैसा व्याघ्र । द्वेष्य पदार्थनके वियोगतें सुख होवे है । व्याघ्र दूर जानेसे सुख होता है । प्रिय पदार्थ मिलनेसे सुख होता है । पुत्र मिलनेसे सुख होता है । अपना प्रेम और द्वेष यही सुख-दुःख देनेहारा है । इस वास्ते राग द्वेषन को छोडकर जो महात्मा होते है तिनको सुखही होता है । दुःख कदापि नहीं होता । हे पार्थ, जो तूं बंधुजनों के वास्ते शोककरता है,, तो पूर्व जन्म के बंधुजनों के वास्ते शोक क्यों नहीं करता?

जो तूं कहेगा कि, ''मै पूर्व जनमको नहीं जानता हूँ तो तेरे सरीखा मूर्ख नहीं है'' क्योंकि आत्मा तो सदा पूर्ण है । जे देहको आत्मा जानते हैं वेही मूढ है; जें देहसे भिन्न आत्मा जानते है - वे संसारको मिथ्या जानते हैं । हे पार्थ! जो कदाचित इस दुर्योधनको तूं नहीं मारेगा तो भी यह मरे बिना रहता नहीं ।

दूसरों का द्वेष

काहे तें ? जो पुरुष दूसरेका द्वेष करता है वह किसीके तो भी हाथसे मरता जाता है । जैसे व्याघ्र हजारो पुरुषनका शत्रु है, तों किसी के भी हातसे मारा जाता है । तैसे यह मूर्ख दुर्योधन सज्ञनोंका द्वेष करनेसें अपनाही शत्रु बना है ।

''द्विषन्तः परकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्वरम् ।
मृतके सानुबंधेऽस्मिन् बद्धस्नेहो पतन्त्यधः'' ॥

(भाग.एकादशस्कंध अ.५)

जो पुरुष दुसरेका द्वेष करता है वह अपनाही शत्रु बनता है । अपने हृदयमें जैसे आत्मा है वैसेही दूसरेके हृदयमें है । यह नहीं जानता है सो मूढ पुरुष है । वह मूर्ख पुरुष अपनेही प्रेतरूप देहमें अनेक योनियों में भ्रमण करिके फिर फिर तीसी देहमें आवता है । जिस देहको चींटी लगी है । भालू मांस खा रहे है, कव्वे आंख फोड रहे है, गीधो अवयवको खंड खंड कर रहे है, यमलोक त्रिशूलादिकनसे टोंच रहे है, ऊद है सो अपनी पावोंसे हृदय निकाल रहे है, ऐसे ऐसे दुःखनको वे मूढ पुरुष सहन करते है । **ऐसे जो मूढ पुरुष होते है, वे अपनी भार्या, पुत्र, माता कोई भी होवे उनका त्याग कर देना चाहिये ।** अंत्यमें अपनाही त्याग कर देना चाहिये ।

काहे तें ? अपनी भी देहबुद्धि नहीं जावे तो प्रयागमें डूबके मरना अगर काशीमें मरना । माता, पिता, स्त्री इनकी बुद्धि भी इन कामोंमें नहीं सुनना । स्त्रियादिकनका त्याग करना ।

तात्पर्यः- देह बुद्धिवाले जितने जितने है उन सबको त्यागना । स्त्री मर गयी, घर जल गया, देह पीडित हुवा, तो भी देहबुद्धि को कभी नहीं धारण करना। भगवान् वशिष्ठ कहते हैः-

''वरं शरावहस्तस्य चांडालागारवीथिषु ॥
भिक्षार्थमरणं राम न मौर्ख्यहतजिवितम्'' ॥

हाथमें खप्पर लेके चांडालों के गल्ली में उच्छिष्ठ भिक्षा मांगना भी अच्छा, क्योंकि उच्छिष्ठ अन्नसे एकही जनममें देह बिटालेगा परंतु **मूर्खपनसे जीवन बिताना अच्छा नहीं है ।** इस वास्ते तेरेको कहता हूँ कि तूं देहबुद्धि छोड दे । आत्मा कहीं जाता नहीं, आता नहीं । जाने हारे केवल प्राणही है । प्राणके जाने आवनेसे 'यह जीवित हैं, यह मरते है' ऐसे लोक कहते हैं । इस जगतमें कोई तो मरता नहीं, या कोई जीता नहीं । भगवान् कहते हैः-

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।।१२-१२।।

इस श्लोक की प्रस्तावना आगामी निरूपण में करेंगे ।

।। श्रीमत्सद्गुरु ज्ञानेश्वर महाराजार्पणमस्तु ।।

३

महावाक्य

दोहा

उमा महेश्वर चरणरज बंदे वारंवार ।
भगवद्वचन सुधारस निकित निरूपण सार ।।

तब भगवान कहते भये - हे पार्थ ! तू ऐसा जानता हैं कि जो यह समस्त बांधवादिक मिले है, सो इसी वक्त मिले हैं, और फिर नहीं मिलेंगे । महावाक्य का सिद्धांत यहाँ भगवान् कहते भये -

''तत्पद''

यह जीव जो बद्ध है सो वेद के वाक्यनतें मुक्त होता है । ''तत्पद'' का ज्ञान द्विविध होता है । परोक्ष और अपरोक्ष ।

अनुभव विना जो ज्ञान होवे है उसको परोक्ष कहते हैं और अनुभव सहित जो ज्ञान होवे वह अपरोक्ष ज्ञान है ।

अविद्याकी हानि परोक्ष ज्ञानसे होवे है । यह परोक्ष ज्ञान वेदके अवांतर वाक्यनतें उपजे है, वरन् महावाक्यके श्रवण किये बिना अपरोक्ष ज्ञान किसी उपायसे उपजे नहीं । ते महावाक्य श्रवण में अपेक्षित है ।

जैसे बालक को दुधसे पुष्टी होवे है, बडा हुवा तो दूध और अन्न मिलके पुष्टी होवे है । तिससे भी बडा हुवा तो अनाजसेही पुष्टी होवे तैसे जो अधिकारी है वह तीन प्रकारके होते है । मंद, मध्यम और तीव्र । इन संपूर्ण अधिकारीयोंको वेदान्त श्रवणतें ज्ञान होवे है । इस श्रवण में उत्तम अधिकारी जे है वे श्रवणमात्रतें ब्रह्मनिष्ठता होई जावे है ।

दृष्टांत :- जैसे इंधन है, उसमें जो इंधन उष्णतासे अत्यंत सूखा है सो

अग्नि लगानेसे एकदम धडकता है । जो इंधन बहोत दिनसे धूप में नहीं रखा गया और सर्दी में थंडाया गया ऐसे इंधनको कुछ कालतक जब अग्नि लगेगा तब जल उठेगा । जो इंधन बरस रहे पानीमें भिगता है वह तेल भी डालनेसे नहीं जलता । और जो इंधन पानीमें सड गया है सो जलताही नहीं ।

तैसे अधिकारभेदतें उंच नीच जीव इस सृष्टीमें है। तहाँ विवेक, वैराग्य, शमादिषट्क और मुमुक्षा इनसे संपन्न तीव्र वैराग्य जिनको हुवा है और संपूर्ण दुःखही जिनको दिखते है- विषय विषमिश्र अन्नकी नाई प्रिय नहीं लगते, तथा सोना और मट्टी दोनों में जिनकी समबुद्धि है और दीन तथा दुःखिनको देखिके अपने शरीरको भी जो नहीं देखते, जिनके नीतिसे देवताओंको भी लाज उत्पन्न होती है; ऐसे महात्मा सत्पुरुष उपदेश मात्रसेही बोधनको प्राप्त होवे है ।

तुम ऐसी कल्पना करो कि एक उदार सावकारका घर है । तिसमें सर्व काल अनाज रहता है; परंतु क्षुधा रहे तबही उसकी किम्मत है । तैसेही नदीमेंसे डूबनेहारेको जो निकारता है, तिसकाही उपकार माना जाता है । तैसेही ब्रह्मज्ञानके वास्ते सत्संगही करना चाहिये ।

उपदेश किसको ?

यद्यपि सुखप्राप्ति की इच्छा सबकोही है तथापि, क्षुधारूपी मुमुक्षा जिसको प्राप्त नहीं भयी है तिसको ब्रह्मज्ञानका उपयोग नहीं होवे है । इसवास्ते गुरूने मुमुक्षा नहीं तिनको ब्रह्मज्ञान नहीं कहना चाहिये । उनको ब्रह्मज्ञान कहनेतें वह ज्ञान मट्टीरूप होता है ।

यद्यपि भगवान् ने अर्जुनके साथ जन्म बिताया था, तथापि जबतक अर्जुनको दुःखरूप प्रतीति नहीं थी तबतक ज्ञानोपदेश नही किया । तथा जीव को दुःख की प्रतीति जबतक नहि होवे है तबतक
ज्ञानका उपदेश नहीं करना चाहिये । जो मुमुक्षु ब्रह्मज्ञान में शंका भी निकारनेकी अवसर नहीं रखता है तिसकोही उपदेश करना ।

जैसे अत्यंत तृषाक्रांत पुरुषको जलकी शंका भी नहीं रहती वैसे पुरुष को पानी देनेसे उसका तुरंतही उपयोग होता है । अगर सन्निपात में जो तृषाक्रान्त होवे तो जल देने बरोबर पी जाता है । शंका नहीं निकारता । तैसे इस विषयग्रस्त संसारमें त्रिगुण, त्रिदोषग्रस्त जो पुरुष है उसके वास्ते सद्वैद्य

श्रीगुरुनाथ के हाथ में वेदान्तरूपिणी औषधि तयार है। जैसे अत्यंत तृषाक्रान्त पुरुष एक पानीकेही उपर दृष्टि राखे है तैसे मुमुक्षु पुरुष जब श्री गुरुवैद्यनके उपर दृष्टि राखे है; उसी पुरुषको इस परमार्थकी तृषा उत्पन्न होवे है। फिर जिसी किसी प्रक्रिया जिसी किसी भाषामें श्रीगुरु बतावे तिसी किसी भाषामें उसको ग्रहण करे, उसमें शंका नहीं करे। जैसा तृषाक्रांत पुरुष यह पानी कैसा है ? बोय आती है नहीं? ऐसी शंका नहीं करे, तैसे उत्तम मुमुक्षु जो है, तो महावाक्यके श्रवण मात्रतेंही वैद्यरूपी गुरुके वचनपर विश्वास राखिके शीघ्रही मुक्त हो जावे है। वह उत्तमाधिकारी वेदनतें काहेतें मुक्ति होवे; कुरानतें क्यों नहीं होवे, ऐसी शंका नहीं करे हैं। ऐसे जो **उत्तमाधिकारी** है तिनको नमस्कार है। जो उत्तमाधिकारी होवे और ब्रह्मज्ञान नहीं होवे तो भी नमस्कारके योग्य है, काहे तें वह ब्रह्मज्ञानके योग्य होवे है। जो राजपुत्र हैं वही राज्यपर बैठने योग्य होता है। यद्यपि वह राज्यके गद्दीपर नहीं बैठा तो भी प्रजाजन उसको प्रणाम करते है। तैसे उत्तमाधिकारी महात्मा ब्रह्मप्राप्ति के योग्य होते है।

दुसरे **मध्यमाधिकारी** होते है। इनको मुमुक्षा तो रहती है परंतु जगतकी लज्ञाभी रहती है। जैसे कोई पुरुषको क्षुधाभी लगी है और उतनेमें उनके घरको कोई संबंधी आये उनके वास्ते पुरणपोली तयार हो रही है, तबतक वह अपनी क्षुधा रोकते है। फिर थोडी देरसे भोजनकी तयारी हुई, पदार्थभी परोसे गये तो बडे मजेसे भोजन होता है। पदार्थोंकी फिर तारीफ चलती है। जरा पूरणपोलीकी थालीभी लाया। तंदुलका सुवास क्या अच्छा है। यह तंदुल बहुत अच्छे है, परंतु भाजी में नमक कम हुवा। तिलकी शाक बहुत अच्छी बनी। यह श्रीखंड देखो। ऐसे तारीफ में भोजन लांब रहा। फेर तृप्तीको कौन देखता है। रुचिपरही ध्यान देवे है।

ऐसेही मध्यामाधिकारीनकी स्थिति है; इनको मुमुक्षा तो रहती है वरन् वैराग्य नहीं रहता। उनके यहाँ जनलज्ञारूपी मिजवान आया है, उनके घर ग्रंथावलोकनरूप पाक तयार हो रहा है। शांकरभाष्य देखो। उपनिषद्भाग देखो। फिर पंचदशीका विचार करो। फिर मुक्त होवेंगे तो होवेंगे ऐसे उनके विचार रहते है। जैसे शक्कर-पानी पीनेसे क्षुधा रोकनेका यत्न कोई करे, फिर जब रोटी खानेको मिले तब मिले तैसे यह मध्यमाधिकारी जगलज्ञाको लेके बैठे है

। गुरुके मुखसे श्रवण तो करते है, पर संध्याके समय उठभी जाते है। फिर आके बैठते है। गुरूके मुखसे दो तीन वाक्य श्रवण करते है। फिर उनकी चर्चा चलती है। वेद तो सच्चे है, परंतु ईश्वर कौन होगा। नैय्यायिक कहते है वैसा जगतका करनेहारा है अथवा सांख्यकी नाई उपादान कारण है, ऐसी कल्पनामें फेरी तृप्ति को कौन देखता है?रुचिपरही ध्यान देते है। सुंदर भाषण करता है। वक्ता की बुद्धिमत्ता और उपमा अलंकारादि भाषणचातुर्य कैसा मनोहारी है, ऐसी मध्यमाधिकारीनकी स्थिति होवे है। ग्रंथोंको देखनेसे तथा गुरु के वचन सुननेसे तिनको ज्ञान होवे है।

कनिष्ठ अधिकारी

अब जो कनिष्ठ अधिकारी है तिनको क्षुधाही नहीं रहती है। आभास मात्र रहती है। जैसे भोजन किये हुये पुरुषको संध्याके समय आभास मात्र क्षुधा रहती है और वह मित्रनमें बैठ करके बाता करता है। फिर कहता है थोडीसी भूक मालूम होती है। फरालभी करने का है। ऐसा कहके फिर औरभी बाते करता हुवा बैठता है। तैसा कनिष्ठाधिकारीको यथार्थ क्षुधा तो नहीं रहती परंतु आभासमात्र रहती है। उनका समर्थ महात्माओंके वचनके उपर निश्चय तो नहीं रहता। परंतु महात्मा जो कहते है वह सत्य होवेगा उसमें उसमें संशय निकारना अच्छा नही, ऐसा समझके वेदान्त में प्रवृत्त होते है। जब वे वेदान्त सुनते हैं, तब उनकी तृप्ति नहीं होती।

उसमें वह शंका निकारता है कि, वेदनके वाक्यमें जो महावाक्य होवे है उसमें तीन शब्द होवे है। वह तीन पदसे ब्रह्मज्ञान होवे है। तो तीन पदमें अंत्यपदसे होवे है वा मध्यपदसे होवे है वा आद्यपदसे होवे है। दोनो पद मीलीकरके ज्ञार ही नाहीं होवे है, दोनो पद अमीलीकरके भी ज्ञार नाहीं होवे और वाक्यभी बने नहीं। ऐसे शुष्क शंकाको निकारे है।

जैसा पुरुष अपने विद्यार्थी पढानेके वक्त सिखाता है कि एकएक मिलके दो होते है, दो दो मिलके चार होते है और चार चार मिलके आठ होते है, तो वह सुनके वह विद्यार्थी शंका करे कि तीन तीन मिलकरके क्यों नहिं चार होवे है ? तो उस शिष्यको छडी लेकर कहना तेरे बापने कहा है इसवास्ते दो दो

मिलके चार होते है। – वैसे जो पुरुष वेदान्त में शंका निकारते है उनको शाप देकर दुःखनको बताना चाहिये। उसके बिना वे रास्तेपर नहीं आवते है। ऐसे जो ऋषि, गुरु होते है वे शाप देकर दंड देते है।

नल-कुबर की कथा

ऐसी एक कथा भागवतमें कहीं है। कुबेरके पुत्र नलकुबर थे। वे स्त्रियोंमें क्रीडा करते थे। उस समय वहाँ नारद प्राप्त भये। स्त्रीयाँ भी नग्न थी। उन्होने लज्जासे वस्त्र लिये, वरन् इन मूढोनें वस्त्र नहीं लिये। वह देखिके नारदनें उनको शाप दिया।

नारद शांत थे तो उन्होंने शाप क्यों दिया? ऐसी शंका नहीं करना चाहिये। काहेंते? महात्मा पुरुष जो होते है वे मूर्ख पुरुषका पहिले नाश करते है और फिर बोध करते है; इसवास्ते भगवान् नारदनें उनको शाप दिया, और फिर उःशाप दिया कि, 'श्रीकृष्ण उद्धार करेगा'।

जिन मूर्ख पुरुषनको शापसेभी बोध नहीं होता उनको राजाने कर्तन करना चाहिये। यह कनिष्ठाधिकारीकी बात हुई।

अधमाधम अधिकारी

अब जिनको किंचितभी बोध नहीं होता वे चौथे अधिकारी होवे है। ऐसे पुरुष अधमाधम होवे है। वे दूसरेका द्वेष करके नरकमें जायके दुःख भोगते है। फिर संसार में व्याघ्र सिंहादिक दुःष्ट योनि में आवते है। फिर बहुत पाप होनेपर नरकमें जाते है। ऐसे अनंत योनियों में फिरफिरके जर्जर होय, करिके यमयातनासे जब जर्जरता होई जावे तो ईश्वरकी मर्जीसे कभी उनको बोध होवेगा तो होवेगा।

अर्जुन की श्रेष्ठता

भगवानने समझ लिया कि, अर्जुनको उत्तमाधिकारिका थी। भगवान् जानते थे कि, यह पूर्वजन्मसे मेरा भक्त है। तथा यह अर्जुन हमारे एककोही जाने है। यद्यपि इसको मोह भया है तौभी यह मेरीही तरफ देखता है। मोहमें जब कोई पुरुष होता है तो मित्रका बचन सुनता नहीं। परंतु यह मेरे मुँहके तरफ देखता है। इसवास्ते यह धर्मसे चलायमान नहीं है।

यह कौंतेय है। याने कुंतीका पुत्र होनेसे इसके कुलशील अच्छे है। और यह पांडव है। पांडु जैसे निर्मल थे तैसा इसका भी यश निर्मल है। यह पार्थ है।

पृथाका पुत्र है। **'पृथा नाम महिमा'** इसवास्ते यह महात्मा है। अमहिमासे नहीं उत्पन्न भया है। ऐसे अर्जुनको उत्तमाधिकारी समझके भगवान उसको महावाक्यका उपदेश करते भये।

महावाक्य के उपदेश में त्रिविध याने तीन प्रकारका विवेक होता है।

ईश्वर विवेक, जीव विवेक, और **ब्रह्म विवेक**।

इनमें ब्रह्मज्ञान पीछेसे होता है। और ईश्वरविवेकभी पहिले नहीं होता है। काहेतें ?

ईश्वर अनुभूत पदार्थ नहीं है। इसवास्ते पुरुषको जीव विवेकही पहिले कहते है। **''नत्वेवाहं ....''** इति।

॥ श्रीज्ञानेश्वर माउली समर्थ ॥

नत्वेवाहं जातु नासं नत्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥२-१२॥

दोहा

श्री जगदीश दयानिधि चरण चारु अविकार ॥
बंदौ जोरि जोरि कर हरत चित्त कुविकार ॥१॥

भगवान् कहते है - हे पार्थ, जीव, ईश्वर और ब्रह्म इन तीन विवेकनमें कोई ईश्वर विवेकको आदौ निरूपण करते भये। कोई ब्रह्मविवेक पहिले निरूपण करते है। ब्रह्मविवेक दोनों का फलीभूत है। वे दोनो विवेक बताने हारा श्रुतियोंका महावाक्य है। महावाक्यबिना विवेक किसीको होवे नहीं। संपूर्ण अधिकारियनको अपने अपने अधिकारानुसार शीघ्र तथा देरते ज्ञान उपजे है। और फिर श्रुति जो है तिनसे संपूर्ण अधिकारिनको ज्ञान उपजे है।

वर्णाश्रम

वर्णाश्रमके उल्लंघन करके किसीको ज्ञान उपजें नहीं। ब्राह्मणको वर्णाश्रम के अनुसारही बोध उपजे है। वर्णाश्रमानुसार बिना किसीको बोध उपजे नहीं ऐसा बहुतेरे शास्त्रनका बचन है।

इस वर्णाश्रममे दो प्रकारका वाद है । एक **जन्मकर्मवाद** और एक **गुणकर्मवाद** ।

जन्मकर्मवादमें जनमतेंही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इनोकी उत्पत्ति मानते है । सगोत्र नहीं है ऐसे विवाहित स्त्रीके गर्भमें विवाहित पतिनके वीर्यनतें उत्पन्न होवे है तिसकोही **ब्राह्मण** कहते है । विवाहित क्षत्रिय स्त्री के गर्भ में विवाहित क्षत्रिय पतिके वीर्यतें उत्पन्न होवे है, तिसकोही **क्षत्रिय** कहते है । विवाहित वैश्य स्त्रीके गर्भमें विवाहित वैश्य पतिके वीर्यतें उत्पन्न होवे है; तिसको **वैश्य** कहते है । तथा विवाहित शूद्र स्त्रीके गर्भमें विवाहित शूद्र पति के वीर्यतें उत्पन्न होवे है, तिसको **शूद्र** कहते है । इस प्रकार जन्मकर्मवाद से वर्णाश्रम की सिद्धी है । गुणकर्मवाद पीछेसे कहूँ । इन चारों वर्णन में किसी वर्णकी स्त्री और किसी वर्णका पुरुष इनके संयोगतें चांडालादि **संकर** वर्णकी उत्पत्ति होती है ।

गुणकर्मवादी का मत ऐसा है कि कोई वर्ण जगतमें यथार्थ करिके उपजाही नहीं । सब वर्ण संकररूप है । वे कहते है कि, - जो जनमतेंही वर्ण उपजे है, तो ब्रह्मणने सत्य भाषणही करना चाहिये । जो ब्राह्मण असत्य बोलते हैं तिनको ब्राह्मण्य कैसा रहा ? और मैथुन से जो उत्पन्न हुये उनकोही ब्राह्मण समझना तो मैथुनसे जो उत्पन्न भये नहीं ऐसे सनत्कुमारादिकनको ब्राह्मण नहीं कहना चाहिये । सनत्कुमारादिकनकी उत्पत्ति ब्रह्मदेवके मनतें है; इसवास्ते वह **मानसपुत्र** कहे जाते है ।

इस सृष्टि में पांच प्रकारकी उत्पत्ति है । पाषाणादिक **उद्भिज्य** कहलातें है । कीटकादिक स्वेदज है । पक्षी अंडज है और पशु- आदमी यह **जरायुज** कहलाते है । जरायुज नाम माता के गर्भ में जरायु नामकी त्वचा है । तिनकरिके वेष्टित होते है; इसवास्ते उनको जरायुज कहते है । पंचमसर्ग मानसपुत्रकी उत्पत्ति है । सनत्कुमारादिक मरिच्यादिक करिके ब्रह्मदेवके मनसे उत्पन्न हुये है । इनकी उत्पत्ति मैथुनसे नहीं होवे है । बहुरि पृथ्वी के ऊपर स्वर्ग है । स्वर्गके ऊपर महर्लोक है । महर्लोकके पश्चात् मानस सृष्टि है । मानस सृष्टीमें स्त्री पुरुषका संबंध नहीं होवे है । स्वर्ग में मैथुन सृष्टि है ।

गुणकर्मवादी कहते है जो मानस सृष्टीमें उपजे है तिनोने ब्राह्मण नहीं होना चाहिये । वे और कहते है कि व्यासजी धीवर कन्याके गर्भमे पराशरसे

उत्पन्न हुये है । वाल्मिक ऋषि बमीठा (बमीठा=वारुळ) से उत्पन्न हुये है । ऋष्यशृंग मृगीसे उत्पन्न हुये है । इसवास्ते ब्राह्मणसेही उपजना यह ब्राह्मण्यका लक्षण नहीं है । **जे सत्य धर्मपालन करे वेही ब्राह्मण होवे है । सत्य धर्मका पालन नहीं करे तो ब्राह्मण नाही होवे है ।**

''जन्मनैवहि जातिस्यान्नान्यथा कर्म कोटिभिः ॥.....
शूद्रोपि शीलसंपन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत् ।
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनो .....

जिसका शील अच्छा वह शूद्रभी ब्राह्मण होवे है और जिसका शील अच्छा नहीं वह ब्राह्मणभी शूद्र होवे है, ऐसा गुणकर्मवादीयोंका मत है ।

जन्मकर्मवादीयोंके पक्षमें - ''जो ब्राह्मण अधिकारी होवे तो संन्यास लेके वेदान्त श्रवण करना चाहिये, और क्षत्रिय अधिकारी होवे तो घरमें बैठके वेदान्त श्रवण करना, और वैराग्य नहीं होवे तो शूद्रने संन्यास नहीं लेना । शूद्रको वेद श्रवणका अधिकार नहीं है । शूद्र वेदका श्रवण करे तो कथील तपाके उसके कानमें भरना । शूद्र वेदका उ्चार करे तो उसके जिव्हा का छेद करना और वह वेद को हृदयमें धारण करे तो उसका शिरच्छेद करना । **''उ्चारणे जिव्हा छेदः धारणे शरीर भेदः''** तिन शूद्रने पुराणके वाक्यनतें ज्ञान कर लेना उन्होंने भाषा ग्रंथ पढना । उनको भाषाग्रंथसे ज्ञान होवे तो प्रत्यवाय नहीं है ।''

इस जनममें जो वेद पढते है उनके वास्ते यह संपूर्ण प्रतिबंध है परंतु पूर्व जनमसे विदुर व्याधादिकनसरीका जिनको ज्ञान भया है तिनको यह प्रतिबंध नहीं है । शांकरभाष्यमेंभी ऐसा कहा हैः- **एषां पुनः पूर्व संस्कारवशात्....**

जैसा भगवान् कपिल मुनीको सांख्यका ज्ञान पूर्व जनमसेही था । इसवास्ते पूर्व जन्ममें जिनको ज्ञान भया तिनको निषेध नाही है । परंतु इसी जनममें वेद पढनेवालोने अपने अपने अधिकारसे लेना चाहिये । यह संपूर्ण मत जन्मपक्षीवादियोंके है ।

गुणकर्मपक्षमें जो जो तपस्या करे, हिंसा नाहीं करे, जो सत्यवादी है, जो विश्वासघात नाहीं करे; किसीपर क्रोध नाहीं करे; दीनके उपर दया करे, परोकार करे सोही ब्राह्मण होवे है । फिर वह किसीकेही पेटमें उत्पन्न हो । उसीनें वेद पढना औरने नहीं पढना ।

श्रुति जननी

यह दोऊ मत है । कोई भी पक्ष हो, वेदनके अनुसार वाक्यनतेंही ज्ञान उपजे है । वेदबाह्य वाक्यनतें ज्ञान नाहीं उपजे है । जैसा, कैसाभी बालक होवे- असत् होवे वा सत्पुत्र होवे- अपने माताके दुग्धतेंही उसका पालन होवे है । तैसे मुमुक्षु पुरुषनको एक श्रुतीही जननी है । वह श्रुति कैसी है, मुमुक्षुरूपी पुत्रनके उपर सदा कृपा करती है । यद्यपि दुसरे स्त्रीको माताके सदृश देखना चाहिये, तथापि दुसरे स्त्रीको द्वेष होवे तो कदाचित् बालकको विष देवेगी, तैसा भगवती श्रुतीसे भ्रांतिरूप ज्ञान कदापि उपजे नहीं ।

इतर सांख्यादिक शास्त्रनतें भ्रम उत्पन्न होनेका संभव है । वरन् मुमुक्षु पुरुषनके अनेक प्रकारके भ्रांतिको निराकरण करनेहारी श्रुती माताही है और अपने बालकोंको अधिकारानुरूप उपदेश करनेहारी है । सांख्य आदि शास्त्र में यद्यपि आत्मज्ञान कहा है, तथापि वे शास्त्र मुमुक्षु पुरुषनके ताई स्त्री सरीखे है। स्त्री जारिणी होवे तो कदाचित् विष भी देवेगी और जारिणी नाही होवे तो कदाचित् असत्य बात तोभी कहेगी; परंतु श्रुतिमाता मिथ्या कभी नाहीं कहती । सांख्यशास्त्र जीवकृत होनेसे भ्रम होनेका संभव है । परंतु श्रुतिमाता अपने बालकोंको भ्रांति कदापि उत्पन्न नहीं करती । मातृभक्त पुत्र होवे तो मातापर उसका जितना विश्वास होता है उतना भार्यापर नहीं होता । तैसे जो शुद्ध मुमुक्षु होता है उसका श्रुतिमातापर पूर्ण विश्वास रहता है । सांख्यादिकनमें जो श्रुतिके विरुद्ध अंश है वह नहिं लेना चाहिये । जहाँ श्रुतिका और सांख्यका मिलता है वही सांख्यका वचन प्रमाण मानना चाहिये ।

व्याससूत्रमें कहा है -

''चिरसुप्तानां जागर्यायै श्रुतिरंबावत्''

ज्ञानेश्वर महाराज कहते है-

''नाहीं श्रुतिपरौती । माउली जगा''

श्रुतीमाता कैसी है जैसे कोई स्वप्न देखे; उस स्वप्नमें बाघको देखिके चिल्लाने लगा है । तो उसकी माता उसको पुकारके कहे

''बाल, तूं जागृत हो । डरे मत ।''

तैसे ये संपूर्ण जगत् माया निद्रा में पडे है । निद्रा कैसी है? अपनी एक

रात्र तौ भी रहती है और किसीने नही पुकारा तो भी दिन निकलने पर अपनही जगते है । परंतु यह मायानिद्रा ऐसी है किसीने नही पुकारा तौ भी यह जीव जागृतही होता नहीं है ।

परार्धसे परार्ध कल्पतक वृक्ष, पाषाण, कीटक, मनुष्य योनियोंमें अनंत जन्म फिरे, दुष्कर्मसे नरकमें पडे, पुण्यकर्मनतें स्वर्गनमें जावे, पुण्यकर्म खतम होनेपर वहॉसे गिरपडे । फेरि दुष्कर्मसे नरकमें जावे ऐसे कई जन्म फेरी फेरी स्वर्ग नरकमें जायके सुखदु:ख का भोग करे तोभी यह माया निद्रा नहीं जाती है । ऐसा यह मायारूपी प्रवाह चला है । इस प्रवाह में जीव अपनी वासना जितनी जितनी बढावेगा उतने उतने माता, पिता, स्त्रीपुत्रादिक बांधव मिलते जावेंगे । इस वास्ते मनुष्य जन्ममें ज्ञानमात्र करलेना चाहिये ।

संसाररूपी स्वप्न

फेरी भगवान् कहते भये:- ''हे पार्थ, इस मायानिद्रामें जीव संसाररूपी स्वप्न देखते है । इस जनममें जे मातापितादिक अपनेको मिले है, वैसे पूर्वजन्ममें भी थे और दुसरे जन्ममें भी मिलेंगे । यथार्थकरिके यह संसाररूपी स्वप्नही है । यह स्वप्न कैसा है -

यह 'दुर्गा' है । इसको पतीनें त्याग दिया है । इसको ऐसा स्वप्न गिरा है कि, जिसने त्याग दिया वह पति इसको मिल गया । उसके साथ तीस बरस संसार किया । इसको पुत्र हो गये । इन पुत्रनके विवाहादिक हो कर उन पुत्रनकोभी पुत्र भये ऐसा संसार बढ गया । स्वप्नमें यह स्वप्न है ऐसी स्मृति नहीं रहती ।

काहेतें, अपने इष्ट याने प्यारे विषय जब स्वप्नमें देखे तब ख्याल नहीं रहता है कि, अपन स्वप्न में है । उस स्वप्न में जब जागृतीका अज्ञान होता है तब स्वप्न सत्य भासता है । निद्राके वश हो कर अपनेको भूलता है; तब स्वप्न देखता है । स्वप्नसे जब इसका ऐसा संसार बढा तब फिर ऐसा देखा कि, पुत्रादिक सब नष्ट हो गये । उनके शोकसे यह रोने लगी । और रोते रोते ही यह जागृत हुई। तो जागृत होतेही स्वप्नका शोक, पुत्र, पति और वह तीस वर्षका संसार यह सर्व मिथ्या हो गये ।

लवणाख्यान

ऐसाही एक स्वप्न योगवासिष्ठ में कह्या है। यह स्वप्न लवणाख्यानमें कह्या है। यह कथा दंतकथाकी नाई नहीं है। यथार्थ कथा है।

लवण नामका एक राजा था। उसको मैं स्वप्नमें चांडाल हुवा हूँ और एक चांडाली स्त्रीके साथ संसार करनेसे बहुतसे पुत्रादिक हुये, और फिर वे सब मर गये। और उनके शोकसे राजाने अग्निप्रवेश किया। और उस दुःखसे चिल्लाके चौंक उठा ऐसा स्वप्न गिरा था।

दुर्गाको इष्ट स्वप्न गिरा था। इसवास्ते वह चिल्लाई नहीं। जैसा कोई पुरुष सपनेमें काशीको गया। रस्तेमें उसको बारह बरस लगे। कासीके नजीक जा पहूँचा। वहाँसे दो कोस काशी रही। उतनेमें उसको तृषा लगी और नजदीक एक बगीचा था। उसमें पानी पीनेके वास्ते वह ठहरा। इतनेमें बगीचेमें एक बाघ आया। उसने इसकी चोटी पकडी। तो सपनमें यह आदमी बडेसे चिल्लाने लगा। फिर उसकी माताने जगाया।

उसे बरसका सपन हुवा और मेरेको बारह बरसका हुवा। ऐसा क्यों? तो सपनेमें कालका ख्याल नहीं रहा। घडीमेंही मेरेको बारह बरसकी और दुर्गाको तीस बरसकी प्रतीति भई। क्यों कि सपनमें हम अपनेको भूल गये थे और निद्राके वश व्हयके ऐसी प्रतीति हुई। तैसे यह संपूर्ण जीव ब्रह्मज्ञान घडीभर भूलनेसे अनंत जन्म संसाररूपी स्वप्न मायाके वश होकर देखते है।

समझो दुर्गाको मैने कहा कि, आज रातको तेरा पति तेरेको सपनमें मिलेगा और इसको वैसाही स्वप्न पडा। तो वह स्वप्नही इसको अच्छा लगेगा।

स्वप्न और मरण

सपनेका शरीर दुसरा होनेसे यह शरीर की विस्मृति होती है। उसी सपनेमें दृढता रहनेसे वह शरीर क्षीण होवेगा। महानिद्राही मरण है। स्वप्न देखते देखते उधरही रह जाता है। स्वप्नमें मन देहसे बाहिर निकलता है। रोगसे भी मन शरीरसे बाहिर निकलता है। रोगीको नींद बहुत आती है। नींद आवते आवते लाला याने लार आने लगती है। जितनी बहुत निद्रा लेवे उतनी लार जादा आती है। इसी कारनतें रोगीको जादा लार आती है। मरणसमयमें लार कंठमें रुख जाती है, और प्राणी बहुत निद्रावश होता है। मन, प्राण उस समय

लारसे रुख जाते है। तब उसको मर गया कहते है। मन वासनासे दुसरे देहको उत्पन्न करता है।

शत्रु मित्र वासनासेही बनते है। यथार्थ करिके कोई शत्रू मित्र नहीं होवे है। **जिसके मनमें रागद्वेष है उसीको शत्रु मित्र दिखते है।** जैसे किसी पुरुषके मनमें दुसरेका द्वेष होवे तो स्वप्नमेंभी वह शत्रुको देखता है। वैसे रागद्वेषवाले पुरुष अपने दृष्टि से ही मरणके उपरांत मनसे यमको उत्पन्न करके नरकमें गिरते है।

अच्छा पुरुष होवे तो मरणके पश्चात् मैं अच्छा हूँ। मेरेको सब आनंद है, ऐसाही स्वप्न देखता है। और उसका देह जहाँ जलता है वहाँही उसका दुसरा जन्म होता है। स्वप्नही जब तीव्र होता है तब इधरकी आशा छूट जाती है और वासना दृढ हो कर दुसरा देह लेता है और यह शरीर छोड देता है।

वासनासेही सब संसार बना हुवा है। यह दृष्टिसृष्टिवाद जो है वह वेदान्तमें उत्तम है। यह संसार बहुत कालका स्वप्न है। और यह मायाके वश होकर उपजे है।

जे अपनेको भूल गये है ऐसे मूर्ख पुरुष इस संसारमें आनंद मान करिके अनंत जन्ममें स्वप्न भोगते है और संसारमें दुःखकों प्राप्त होते है। और जे पुरुष संसारके दुःखनको देखके नेत्रसे पानी निकारते है और कालव्याघ्रको डरते है और चिल्लाते है, वे महात्मा धन्य पुरुष है। उनको दुःखनसे निकालने वास्ते भगवती श्रुतिमाता समर्थ है। वे पुरुष कैसे चिल्लाते है, -

''हे ईश्वर मैं स्त्रीको सुख देनेहारी जानता था, परंतु वह यथार्थ करिके सुख देनेहारी नहीं है। वह स्त्री घडीभर पुत्र में स्नेह रखती है; घडीभर घरमें प्रेम रखती है और घडीभर मेरेमें प्रेम रखती है।

पुत्र कैसा है - वह मेरेमें घडीभर प्रीति करता है, घडीभर अपने स्त्रीपर प्रेम करता है; घडीभर अपने पुत्रपर प्रेम करता है।

स्त्री मुमुक्षु होवे तो वह कहती है कि, ''हे ईश्वर या जगतमें मैं पतीको सुख देनेहारी समझती थी। परंतु यह पति यद्यपि मेरे हाथसे सेवा लेते है, तोभी जार कर्मका अपराध हुवा तो क्षमा नहीं करेंगे''।

मुमुक्षु पुरुष हुवा तो वह समझता है कि पति पुत्रादिक सब लोक अपने

अपने अर्थकेही वास्ते मेरेपर प्रेम करते है । यथार्थ करिके इस जगतमें अपने अपने अर्थके वास्तेही सब दुसरेपर प्रेम करते है । पति अपनेही वास्ते स्त्रीपर प्रेम करता है । स्त्री अपनेही वास्ते पतीपर प्रेम करती है । यह मेरी स्त्री मेरेही वास्ते प्रेम करती तो दुसरे स्त्रीपर सापत्नभाव नहीं होता । तथा पुत्रभी अपनेही वास्ते मेरे ऊपर प्रेम करता है । मेरे ऊपर प्रेम नहीं करता । यह संपूर्ण लोक अपनेही सुखके वास्ते दूसरेपर प्रेम करते है ।''

कथा : कात्यायनी और मैत्रेयी

इस विषयमें वेदमें एक कथा है ।

भगवान् याज्ञवल्क्यको दो भार्या थी । उनका नाम कात्यायनी और मैत्रेयी । कात्यायनी गृहासक्त थी परंतु मैत्रेयी घर में आसक्त न होकर पतीकी सेवा करती थी । ऐसे कई दिन बितनेपर याज्ञवल्क्यको संन्यास लेनेकी अभिलाषा भई । उन्होने विचार किया कि अपना जो धन है सो आधा आधा दोनो स्त्रियोंको बॉट देना । ऐसा विचार करिके उन्होने दोनो स्त्रियोंको बुलायके अपना विचार कहा । वह सुनके कात्यायनी चुप हो गयी ।

मैत्रेयी कहने लगी, ''आप मुझे छोडके कहाँ जाते हो?''

याज्ञवल्क्य कहने लगे, ''हे मैत्रेयी, आज तक मैने तेरे साथ अच्छे अच्छे विषयोंका भोग किया, तेरे साथ रसाल अन्नका मैने सेवन किया. तेरे गालके मैने चुंबन किये । वरन् इतनाही सुख भोगनेपर मेरेको सुख नहीं हुवा । इसवास्ते यह धन तुमको आधा आधा बाँटके मैं संन्यास लेनेको जाता हूँ ।''

पतीका यह वचन सुन करिके मैत्रेयी कहने लगी, ''भगवान् , मुझे यह धन नहीं होना । यह धन लेकरके मैं क्या करूं? जिस धनको आप खोजते हो, वही धन मेरेकोभी मिला दीजिये ।''

उसका यह अमृतबचन सुन करिके भगवान् आनंदित भये । कहने लगे कि ''तूं धन्य है । अपने आत्माको जाननाही सब बातोमें श्रेष्ठ है ।'' फिर याज्ञवल्क्यने यह उपदेश किया:-

''न वा अरे पत्युःकामाय पतिः प्रियो भवति,
आत्मानस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति ।।
आत्मानस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति ।।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञात इदं सर्वं विदितम् ।।''

बृहदारण्यक उननिषद् ४-५-६

वामन पंडितने अपने स्त्रीको ऐसाही उपदेश किया है । उन्होने ऐसा विचार किया कि, यह स्त्री अपने वासनासेही मेरेको पति मानती है तो मेरे ऊपर वासना करिके यह जब मर जावेगी तो फेरि फेरि मेरेकोही पति मिलावेगी और फिर फिर संसारमें आवेगी । इस बिचारसे वे उसको कहते भये -

''पति निमित्त पती तुजला प्रिये । प्रिय असे सहसा म्हणतां नये ।।
परम आवडि आपुलि आपणा । वळख तूं तुज टाकुनि मीपणा ।।१।।

वामन पंडित कहते भये, ''हे स्त्री, तूं अपने आत्माकोहि जान और उसीपर प्रेम करते जा । भलते पदार्थपर प्रेम नहीं करना ।''

मैत्रेयीको कहे हुये उपर्युक्त बचनोंका अर्थ यह है:- पतीके वास्ते पति स्त्रीको प्रिय नाहीं है, अपनेही वास्ते पति प्रिय है । स्त्रीके वास्ते स्त्री प्रिय नहीं है, अपनेही वास्ते स्त्री प्रिय है । पुत्रके वास्ते पुत्र प्रिय नहीं होवे है, अपनेही वास्ते पुत्र प्रिय होवे है । पुत्रके वास्ते प्रुत्र प्रिय होता तो पुत्रने सौ जूते मारे तौभी प्रिय काहे नहीं लगता है । लोकोंके वास्ते लोक प्रिय नाहीं होवे है तो अपनेही वास्ते लोक प्रिय होवे है । देवके वास्ते देव प्रिय नाही है अपनेही वास्ते देव प्रिय होवे है । अपने सुखके वास्ते देव प्यारा नाहीं होवे, तो रावण-रावण क्यों नहीं कहना? रामकृष्ण क्यों कहना?

याज्ञवलक्य कहते भये- अपने आत्माके वास्तेही संपूर्ण पदार्थों में प्रेम होवे है । स्ना प्रेम किसीका किसीके ऊपर नाही है । इसी कारणतें मुमुक्षु पुरुष कहता है कि, ''हे ईश्वर किसीका किसीके ऊपर प्रेम नाहीं है और इस जगतमें मेरा कोईभी नाहीं है । जिसको मैं अपना समझता हूँ यह देहभी मेरा नाहीं है ।''

यह देह कैसा है:- यद्यपि इस देहको मैं मास्तर ऐसा समझता हूँ वही देह मलसे भरा हुवा है और तुच्छ है । ऐसा ईश्वरके नजीक चिल्लाना इसीका नाम भक्ति है । जिनको संसार करिके श्रम हुये है वही ऐसा चिल्लावे है । वह और कहता है ''हे परमेश्वर! दुसरेके थूक और मलमूत्रको देखिके मेरेको घृणा होती

है, तो मेरे देहमेंभी वही पदार्थ है । दुसरेकी मुँहकी बोय आवे तो मैं नहीं लेने चाहता हूँ । ऐसा मैं विषमदृष्टि मूर्ख हूँ, अपराधी हूँ, बडा पापी हूँ । मेरे सरीखा मूर्ख इस जगत्में कोई नहीं है''

ऐसा कह कहके जलके बिना मच्छी सरीखा तडपता है । ऐसे मुमुक्षु पुरुषनको उठावने वास्ते श्रुतिमाता तयार है । ऐसे जो नहीं है ऐसे मूर्ख पुरुष अनंत संसार में भ्रमतेही रहेंगें । मच्छी ऐसी तृषा रहे उसीको परमार्थ होवे है और वेही संसार पार होते है । तिसी मुमुक्षु पुरुषनको नमस्कार है । जो संसारके दुःखनको देखिके संसारसे अलग होते है, चांडाल, चिटी, कीटकादि सब प्राणियोंके ऊपर प्यार करते है, जिनको आत्माके बिना कोई प्रिय नाहीं होवे है, लक्ष्मीको थूकके बराबर देखते है वे संसारके पार जाते है ।

ऐसेही पुरुषनको श्रुतिमाता पुकारे है, ''हे पुरुष! तू ब्रह्म है । इस संसारमें मत गिरना ।'' श्रुतिमाता कामधेनु है । धेनु जैसी, ब्च्चाके सिवाय दूध नहीं देवे है, वैसे यह श्रुतिमाताभी ब्च्चाकोही दूध देवे है। संत उसके बच्चे है । महात्माओंके मुखनतें जब दूध आवे तबही मुमुक्षुओंको पीनेको मिलता है । इस वास्ते गुरूके मुखसेही श्रुतीका अर्थ समझना चाहिये ।

कल्पना करो कि, जिसके चारों तरफ अग्नि लगा है, ऐसे घरमें कई आदमी बैठ रहे है । बाहर नहीं आवते है । तो उनको अपन कहेंगे कि, यह इस घरमें जलके मरनेवाले है । तद्वत् जे पुरुष चारों तरफसे दुःखनको देखिये यह संसार दुःखसे तप्त होकर उसमेंसे निकलनेका उपाय नहीं करे और अभी तक कालके पाशमें परे है वे मरनेवाले है, ऐसा समझना चाहिये ।

श्रुतिमाता मुमुक्षुरूपी बालकोंके वास्ते सच्चा निष्काम प्रेम करनेहारी है। उनका प्रेम अपने सुखके वास्ते नाहीं होवे है । उनका प्रेम सच्चा रहता है । साधु पुरुष तथा श्रुतिमाता यह दोउही इस जगतमें सच्चा प्रेम करनेहारे है । माताभी अपने बालकके ऊपर सच्चा प्रेम नहीं करती है । चिल्लाते चिल्लाते बालकके नेत्रनका पानी बंद हो जावे तब उठाके गोदमें लेती है ।

जब मुमुक्षु पुरुष अपना लक्ष चारों तरफसे खींचके तिस ईश्वरके तरफ लगाता है और जब ईश्वरके कोमल चरणनपर अपने मस्तकको रखता है उसी वख्त तिन कोमल चरणनमें तिसका चित्त लीन हो जाता है । ऐसी स्थिति होनेपर

जब वह पुरुष श्रुतीमाताका पुकारना सुनकर, ''मैं देह नहीं हूँ'' ऐसे अनुभवको प्राप्त होता है तब वह शांत होता है, अचल होता है, स्थिर होता है, अपनी आनंदमें डुलता रहता है; और सदा तृप्त रहता है । वह फिर कहीभी दुःख नहीं देखता । यह सब संसार और संसारके दुःख उसको बाधा नहीं करे है । वह तृप्त है । वही सुखी है । वही आनंदी है । वही ईश्वर है । श्वान, पाषाण, दुष्ट, सुष्ट, पशु, पक्षी, चींटी, धीमक इनसे लेकर ब्रह्मा तथा क्षीराब्धिवासी नारायण, यह सब अपने रूप देखता है । ऐसा पुरुष धन्य है । इतना कहकर भगवान् कहते भये, ''हे पार्थ :- पशूके नाई तू क्यों रोता है ? हे मूढ, यह तेरे बांधव तेरेको पशु तथा कीटक योनीमेंभी मिलेंगे । क्या तूही एक बंधु प्रेम करने हारा है? पशु पक्षीभी बंधुप्रेमसे रहते है । तू मनुष्य होके भी बंधुओंके ऊपर प्रेम रखता है तो पशुपक्षीमें और तेरेमें क्या भेद है । पशूके नाई बांधवके प्रेममें वश न हो कर, अपना धर्म पालन करना और संसारको लाथ मारके धन्य होनाही मनुष्य जन्मका फल है ।''

४

॥ श्री ज्ञानेश्वरमाउली समर्थ ॥

दोहा

श्रीज्ञानेश्वर चरणरजीं अविरल धारो शीस ॥
आगे टीका कहनको देहू परम असीस ॥१॥

फेरि भगवान् कहते भयेः- ''हे कुंतीनंदन, तू काहेके वास्ते पशूके नाई रोता है । हे मूढ ! यह बांधव, माँ, बाप और सब गोत मेरा है ऐसा कहके रोता है तो यह सब गोत पशू योनीमेंभी सुलभ है । जो तू कदाचित् कुत्तेके योनीमें गया तो कुत्तीको एकही समयमें पाँच पाँच ब्च्चे होते है, तब तेरेको पाँच पाँच बांधव एकदम मिलेंगे । कदाचित् तू शूकरके योनीमें जावेगा तो बारह बारह बांधव तेरे को एकदमसे मिलेंगे । साँपके योनी में जावेगा तो हजारो बांधव एकदम मिलेंगे।

शोक से देहबुद्धि

इस देहमें पिता, माता, बांधवके वास्ते शोक करेगा तो देहबुद्धि को धारण करिके तू नीच योनीमें जावेगा क्यों कि, यह जो देहबुद्धि है, या देहबुद्धिकरिके पशु, पक्षी बंधे है । मनुष्यजन्ममें आत्माको देहतें भिन्न जानिके

दुसरेपर दया करना योग्य है । बांधवके ताई शोक करना उचित नाही होवें है । यह देहबुद्धि बहुत प्रबल होती है । **देहबुद्धि पुत्रकोभी जानती नहीं** है ।

देहबुद्धि का आश्रय करिके कुत्ता अपने जात भाईसे लडता है और उसको रोटी नाहीं खाने देता है । देहबुद्धीका आश्रय करिके गय्या और बैल अपनी झुंडके गय्या वा बैलको आने नहीं देती है । देहबुद्धीको आश्रय करिके गय्या अपने बछडेके सिवाय दुसरे बछडेको पीने नही देती है । इसी देहबुद्धीका आश्रय करिके बिल्ली अपने ब्लोंको भक्षण करती है । देहबुद्धीको आश्रय करिके बिच्छू पीठमेंसे ब्लो बाहिर निकलनेपर मर जाते है; वही देहबुद्धि तेरेको नीच योनीमें मातापितादिकनमें गिरावेगी ।

यह देहबुद्धि जब उत्पन्न हो जाती है तब संपूर्ण दुःखनको पुरुष अधिकारी होवे है । देहबुद्धि जितना दुःख देवे है उतना दुःख देहभी नहीं देता है । **निद्रामें साँपभी आंगपरसे गया तो दुःख नहीं होता है; वरन् जागृतीमें देह बुद्धीसे थोडा सा अपमान भी सहन नहीं होता ।** किसी लडकेने अपमान किया तो मैं मास्तर हूँ इस देहबुद्धीसे दुःख होता है ।

तात्पर्यः- मान अपमान सब देहबुद्धीसे होते है । देह होना दुःख नही है । वरन् देहबुद्धि रखना अत्यंत दुःख है । जैसे कंटक है, वे अपने घर आयके दुःख नाहीं देवे है । काँटेके पास जानेसे दुःख होवे है । तैसे देह आप होके नाहीं दुःख देता है किंतु बलकरी देहबुद्धि धारण करनेसे दुःख देता है । अपन कंटकोसे दूर निकरी जावे तो वे दुःख देनेके वास्ते पीछे दौरते नहीं है और अपनेको बुलावते भी नहीं है । वैसे देहका अभिमान बलकारी त्याग देवे तो वह अपने तरफ खींचता नहीं । मै फलाना हूँ- मै अर्जुन हूँ- ऐसा अभिमान धारण करे, तबही दुःखनका अधिकारी होवे है ।

फेरि भगवान कहते भये,- हे पार्थ! **देहबुद्धि में दुसरेकी दया नहीं आती है वरन् आपसमेंही बैर कराती है ।** जैसे मार्जार, कुत्ते यह आपसमेंही लडते है वैसे जो मनुष्य होकेभी आपसमें बैर करे तो दुसरेकी दया कहाँ आवेगी । तू अपने बांधवोंके वास्ते जो रोता है तो वे बांधव हर योनीमें सुलभ है । मनुष्ययोनीमें आयके बांधवोंके वास्ते रोवेगा तो तेरेको मनुष्य कहनेके बदले श्वानही कहना उचित है ।

फेरि भगवान कहते भयेः- हे पार्थ! जब तुम पांडव बनमें गये थे तब तूहि युधिष्ठिरको कहता था कि कब वह दिन आवेगा जिस दिन मैं दुष्टको मारूंगा । राजा युधिष्ठिर बडा दयावान् है । वह पक्षीयोंपर भी दया करता है । तिसके क्रोधको उद्दीपन करनेके वास्ते भीम ओर तुम कहते थे कि, 'बारह बरसके वनवासकी प्रतिज्ञा छोड देवो और युद्ध करो ।' वही समय अभी प्राप्त भया है । युधिष्ठिर दयावान् होकेभी रोता नही है । तो वह क्या तेरेसे मूर्ख है? मेरेको तूही मूर्ख दिखता है ।

योग्य समय में अपना धर्म छोडके शोक करना यह पशूका काम है । स्मृतिभी ऐसीही है ।

मनुष्य पशू से भी नीच

''आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनः पशुभिः समानः ॥

हे पार्थ ! मनुष्यमें और पशू में फरक क्या है? मनुष्य जैसा खाता है, पीता है, डरता है, पशूभी खाते, पीते और डरते है । आदमी स्त्रीसंग करते, तो पशूभी स्त्रीसंग करते है । इन बातनमें कछु फरक नाहीं है । फरक इतनाही है कि, आदमी तो धर्म को जानते है और पशु नहीं जानते । जो पुरुष, धर्म नाहीं जानता है वह पशूसेंभी नीच है । मनुष्यमें धर्म नाही होवे तो वह कुत्तेसेभी नीच समझना चाहिये ।

कुत्ता भादोमेंही स्त्रीसंग करता है । हेला (भैसा) ऋतुमेंही स्त्रीसंग करता है । परंतु आदमी धर्मसे हीन हुवा तो दिनदिन उस स्त्रीके अधीन होवे है । इन बातनमें पशूसेभी पुरुष नीच होवे है । **धर्महीन पुरुषमें तेज नाहीं रहता है ।** काहेतें पशु किसी स्त्रीके ऊपर निगाह नहीं रखते है । कुत्ता कुत्तीपर काम उत्पन्न होनेपरही दौरता है । परंतु आदमी सब दिन पराई स्त्रीके ऊपर कामभी नहीं होवे तोभी निगा रखता है । और यह कैसी मिलेगी इसी चिंतामें रहता है । फिर पशु कैसा है? पशूका मालकने पाले, तो अपने मालक का द्वेष नाहीं करे है । आदमी अपने मालकका पैसा अपने हाथ में कैसा आवेगा इस बुद्धीसे सबदिन उसका द्वेष करे है । पशु अपने जातके स्त्रीसेही संग करता है । बैल गायसेही संग करता है, घोडीसे संग नाहीं करेगा । मनुष्य काम उत्पन्न होनेपर अपने

स्त्रीसे तथा अन्य स्त्री चांडाल म्लेछादिकन के स्त्रियों के साथ भी संग करेगा। पशुओंको कितनाही काम उत्पन्न होवे पाँवसे नाहक वीर्यको नाही गिरावे है वरन् पुरुषको काम उत्पन्न हुवा और स्त्री नाहीं मिली तो अपने हाथसे अपना वीर्य गिराते है। पशु स्वप्नमें वीर्यको नाहीं गिरावे है परंतु मनुष्य स्वप्नमें स्त्रीसंग करिके वीर्यको पतन करावे है। इसवास्ते हे पार्थ! पशूसेभी मनुष्य नीच है। परमार्थहीन मनुष्य होवे तथा धर्महीन मनुष्य होवे तो पशुओंसे भी तेजहीन होवे है।

तूं बांधवोंके ताईं काहेको रोता है? **मनुष्यमें धर्म नाहीं होवे तो उसमें किंचित् भी तेज नाहीं रहता है।** ऐसा पुरुष बलसे भी पशुओंसे हीन है। पक्षीओंका आकाशमें उडनेका बल रहता है। कोई उनको मारनेको जावे तो वे उड जाते है। गय्यादिकनको उनके शृंगही शस्त्र होवे है। बाघ को दाँत और नख यही शस्त्र है। कुत्ते को उसके नख शस्त्र है। खरगोश का चलाँकी शस्त्र है। हत्तीको उसके दंत शस्त्र है। परंतु धर्महीन पुरुष बलहीन होनेतें कुछभी शस्त्र नाहीं होवे है।

पक्षीने चोरी करी और आदमी उसको पकडने जावे तो उड जाता है। वरन् मनुष्यने चोरी करी तो वह राजाके हाथसे नहीं भाग जा सकता। इसवास्ते पुरुष धर्महीन होवे तो बलकरी पशूसेभी नीच होवे है। आदमी कैसा नीच है? कुत्ते जो है वे मालकका अनाज खायके इमान से रहते है। धर्महीन आदमी अपने मालकका अनाज खायके मालककेही मत्थेके केश उखाडनेका तयार होता है। इस प्रकार धर्महीन पुरुष तेज और बलसे जैसा हीन होवे है तैसा बुद्धि करिकेभी पशुओंसे हीन होवे है। या प्रकार करिके धर्महीन पुरुष बल, बुद्धि और तेज इनसे पशुओंसे नीच होता है। पशु जो मर जावे तो तिसको चर्मके पनहिया बनते है, और पशुओंके चर्मकरी आदमी अपना गुजारा कर सकता है। परंतु आदमी मरे तो पशुओंको उसका झाटाभी नाहीं मिलता है। आदमीयोंका किंचिन्मात्र पशुओंको उपयोग नाहीं होता है। इसवास्ते धर्महीन आदमी उपयोग करिके पशुओंसे भी हीन होवे है। पशु और कैसे है? पशूका जितना चारा डारे उतना वे पेटको खाते है और बछडेको दूध पिलाते है। आदमी धर्महीन होवे ता कृपणता करिके वह पेटसे नाहीं खाता है और पुत्रकोभी नाहीं देता है। दूसरेको भी नाहीं खिलाता है वरन् पैसा जमा करिके रखता है। इसवास्ते धर्महीन

आदमी पशुओंसेभी अत्यंत नीच होवे है। पशु कैसे है? जब उनको ब्चो होते तब बचपनमे उनका पालन करते है। परंतु वे ब्चो बडे होनेपर चाहे उधर चले जाते है। उनकी माता और पिता - मेरे ताबेमें रहो, ऐसा उनको नाहीं कहते है और अपनी सेवा के वास्ते उनको तकलीफ नहीं देते है। जंगल में फिरते रहते है। वहाँ खानेपीनेको नहीं मिला तो जंगलमेंही मरते है पर सेवा नहीं कराते है। धर्महीन आदमी पुत्रसे मर तक सेवा करावे है। अपन तों धर्म नाहीं करे वरन् दुसरेको भी धर्म नाहीं करने देते है। इस वास्ते धर्महीन आदमी स्वतंत्रता से भी पशुओं से होवे है। धर्महीन पुरुषोंकी नीचताका ऐसा वर्णन करनेमें अब मेरी मति नहीं चलती है। हे पार्थ! तूं कौंतेय याने कुंतीका पुत्र है। ऐसा धर्मनिष्ठ होकर और धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ तथा शूर होकर बांधवों के वास्ते धर्मको छोडना तेरेको उचित नाहीं है। जो धीर पुरुष होते है वे धर्मके रास्तेमें बहुत बिचार करिके किसी बातको कदाचित् भी नाहीं डरते है; यह बात आगामी श्लोकमें कही है। वह श्लोक यह है :-

''देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

५

शोक अनुचित

॥ श्री ॥

फेरी भगवान कहते भये :- हे पार्थ, जो तू इन बांधवों के वास्ते शोक करता है, तो धर्मको छोडके बांधवोंके वास्ते शोक करना तेरेको अनुचित है; क्यों कि धीर पुरुष जो होते है, वे इन बातनका विचार करिके दु:ख को प्राप्त नाहीं होते है और बांधवों कें वास्ते शोक नाहीं करते है।

किस बुद्धीसे शोक होता है? याने इस पुरुषको काहेके वास्ते शोक उत्पन्न होवे है? जे ''यह बांधव मेरे है'' यह फेरी मेरेको नाहीं मिलेंगे, इस बुद्धीसे शोक उत्पन्न होवे है। फिर यह बांधव इस जनममेंहि मिले है। इनके मरजानेके पश्चात् फिर नाहीं मिलेंगे, ऐसे बुद्धीसे शोक होवे है। धीर पुरुष जो होते है वे यह विचार करते है कि पशु योनियोंमेंभी बांधव सुलभ है। ऐसे विचारसे

शोक नाहीं करते है ।

कोई नास्तिक लोक कहते हैं कि, पुनर्जन्म नहीं है । पुनर्जन्म नहीं माने तो सुख दुःख क्यों प्राप्त होते है । बालक छठेही दिन मर जाता है; जो उसका पूर्व जन्मका कुकर्म नहीं लिया तो मरने का कारण क्या?

दुसरा ऐसा है कि, एक आदमीको दो लडके भये, उसमें एक बुद्धिमान है और दुसरा मूर्ख है । तो एक माँ-बापके लडके दो तऱ्हापर क्यों गये? क्या उनके माने एकको दूध पिलाया और दुसरेको क्या पानी पिलाया?

तिसरा कारण ऐसा है कि, लडके की माँ दो दिनमें ही मरती है; कोई लडके की माँ लडकपनमें मरती है, और कोई की माँ पुत्र बडा हो कर मरनेके उपरांत मरती है । ऐसा क्यों होता है? इस वास्ते पुनर्जन्म मानना चाहिये ।

फेरि भगवान् कहते भये :- हे पार्थ! जो तू इन बांधवोंके वास्ते शोक करता है तो क्या इसी जनम में मिले है और दुसरे जनम में नाहीं मिलेंगे । ऐसा है तो फिर तेरा पिता जो राजा पंडू उसके वास्ते क्यों नहीं शोक करता है? जो तू पूर्व कर्मको नाहीं मानेगा तो यह भीष्मादि दुर्योधनके तरफसे क्यों लडते है? और तुम पांडवों को बन में काहे के वास्ते जाना पडा । जो तू पूर्वजन्म मानत है तो पूर्व जन्मके बांधवोंके वास्ते शोक क्यों नहीं करता ? जो तू कहेगा कि उनको मैं भूल गया हूं। ऐसा कहके इसी जन्मके बांधवपर प्रेम करता तो कुत्ते में और तेरेमें क्या फरक है । यह **श्वान-प्रेम** हुवा ।

अब इन बांधवोंपर जो तू प्रेम करता है तो दुसरे जनममें जब दुसरे बांधव तेरेको मिलेंगे, तब उनोंके उपरही तू प्रेम करेगा, और इनको भूल जावेगा । ऐसा **भ्रमर-प्रेम** क्या कामका? भ्रमर भी एक फूलपरसे उडके दूसरे फूलपर जाता है तो उसी फूलपर उसका प्रेम रहता है और पहिले फूलको भूल जाता है ।

इस वास्ते जो धीर पुरुष होते हैं वे शोक नहीं करते है । या जनमके बांधवोंमें जो तू प्रेम करता है तो पूर्व जनमके बांधवमें भी प्रेम करना चाहिये । पूर्व जनमके माताको तू क्यों भूल गया? पूर्व जनमके मातापिताके वास्ते तू शोक क्यों नहीं करता है? क्या इस जनमके मातानेही तेरेको दूध पिलाया है? और पूर्वजन्मके माताने क्या तेरेको मट्टी खिलाई थी?

धीर पुरुष जो होते है वे कोईभी अपना नाहीं जानते है और जब किसीको

अपना कहते है तों उसके उद्धार के वास्ते कहते, मोहवश होकर नाही कहते है । जैसे कोई एक नदी में लकडे बहते चले है, तो बहते बहते एक जगह मिलते है, फिर भौरा आया तो बिखुर जाते है । ऐसे जहाँ तक नहीं गलते तहातक विखुरते जाते और फिर मिलते जाते है । वरन् जब वे सब गल जाते है तब कुछभी नाहीं रहता है । सब पानीका पानीही रहता है । वैसा ये संसारनदीके प्रवाह में बहते हुये जीव जब ब्रह्मसमुद्रमें मिलते है तब गल जाते है परंतु जबतक संसारके प्रवाहमें बहते रहते है तब तक एक जगह मिलते है फेर बिखुरते है; फिर मिलते है, फिर बिखुरते है; ऐसे फिर फिर बिखुरते जाते है और मिलते जाते है । जबतक उनकी वासना नहीं गलती तबतक इस संसारमें बारबार मिलते है, बिखुरते जाते है । अंत में जब वासना गल जाती तब सच्चिदानंद परमेश्वरही सब भरा रहता है । धीर पुरुष जानते हैं कि, यह सब वासना का खेल है । यह शरीर का आना जाना जैसा लकडेका खेलना है । ऐसा बिचार करिके धीर पुरुष जो होते है वे अपना कोई नाहीं समझते है ।

या देहकी तीन अवस्था होती है- बालपन, तरुणपन और वृद्धपन । तीनों शरीर भिन्न भिन्न होते है । भिन्न भिन्न कैसे होते है? तरुणपन का जो शरीर है वह बालपनके शरीरकी वृद्धि है । शरीरकी दिन दिन वृद्धि होती है, ऐसा कोई कहे तो उनको हम ऐसा पूछते हैं कि वृद्धपनका शरीर तरुणपनसे भी बढना चाहिये । ऐसा मरे तक बढते जाना चाहिये । परंतु यह नियम शरीरको नहीं लगता । उलटा वृद्ध शरीर तरुणपनसे घटता जाता है । इस वास्ते तीनों शरीर पृथक् पृथक् है । बालपनका शरीर भिन्न, तरुणशरीर भिन्न और वृद्धपनका शरीर उससे भिन्न होता है ।

कोई कहे कि, शरीर तो एकही है । बालपनमें जो शरीर था, वही तरुणपनमें है और वहीं वृद्धपन में रहता है । मैं बालपनमें था सोई तरुणपनमें हूँ ऐसा कोई कहे तो इस कहने में क्या प्रमाण है? मन एकही है परंतु शरीर एक है इसमें क्या प्रमाण है? कोई कहेगा कि, बालपनमें जो शरीर हम देखते थे सोई अब तरुणपनमें है तो यह काहेपरसे सत्य मानना? इसमें क्या प्रमाण है? दोनोभी बालपन में देखेंगे तो शरीर एक होवेगा परंतु तरुणपन में तेरा भी शरीर बदला और मेरा भी बदला; तो बालपनका और यह शरीर एक कैसा

हुवा? इसवास्ते शरीर एक नहीं है। एक परमात्माही सब अवस्थामें एक रहता है। सो परमात्मा कहते भये जैसे या जीवको इसी देहमें बालपन, तरुणपन और वृद्धपन होते है और तीनों अवस्थामें जीव एकही रहता है; वैसा दुसरा जन्मभी इसी देहमें होता है। इसवास्ते हे पार्थ! जो तू बांधवोंके शरीरकेवास्ते शोक करता है तो बालपनके शरीरके वास्ते क्यों नहीं शोक करता? यह शरीर तो नाशमय है। नाशमय वस्तु के विषयमें काहेको शोक करूं, ऐसा तुम विचार करो।

६

॥ श्री ॥

दोहा

विरहसुरहमह बुद्धि को हरिचरणन की आस ॥
हरि प्रीति करि भजनवश मनमों ब्रह्मबिलास ॥१॥

फेरी भगवान् कहते भयेः- हे पार्थ! तू या नाशमय वस्तु के विषयमें काहेको शोक करता है। काहेतें? जिस वस्तूका अवश्य नाश होता है तिस पदार्थ के विषय में शोक करनेका प्रयोजन नाहीं है। शोक किस वस्तु के वास्ते होता है? जो वस्तु थोडी देर अपने पास रहती है और फिर नष्ट होती है उसके वास्ते शोक होता है। परंतु अत्यंत अविनाश वस्तु के विषय में शोक करने का प्रयोजन नाहीं है। अपनेपास जो वस्तु रहती है तिसके वास्ते कोई खटपट नहीं करता ।

जैसे तुम्हारी स्त्री है, तो स्त्री मिलनेके वास्ते तुम पुनः खटपट करते हो क्या? वैसे तुम्हारी कन्याके वास्तेभी तुम खटपट नहीं करते। काहेतें? तुम जानते हो कि वह अपने घरको एक दिन जानेहारी है।

तात्पर्यः- जो वस्तु हमेशा अपने पास रहती है, या जो वस्तु हमेश रहनेहारी नहीं है तिस वस्तूके वास्ते शोक नहीं होता है। परंतु जिस वस्तुकी अभिलाषा है और अपनेको मिलती नहीं है, तिसीके वास्ते आदमी खटपट करता है। यत्न उसी वस्तूके वास्ते होता है कि जिसकी अभिलाषा है और मिलती नाही है। जिस वस्तु की अभिलाषा नाहीं होवे तिस वस्तु के वास्ते कोई भी खटपट नाहीं करता है।

भगवान् कहते भये हे पार्थ! जिनके वास्ते तू शोक करता है वे तेरे बांधव

अवश्यही नाशको प्राप्त होवेंगे। जो तू आत्माके वास्ते शोक करता है तो आत्मा हमेशा रहनेहारा है। जिस यत्नसे फायदा होवे वैसाही यत्न करना चाहिये। जिस यत्नसे फायदा नहीं वैसा यत्न नहीं करना। कुत्ता, भैंसा, बिल्ली, घोडे, बोलते नहीं है, तो उनको बोलना सिखानेका यत्न कोई भी नाहीं करते। क्यों कि ऐसा यत्न निष्फल होता है। सुचा (पोपट) उसको सिखानेसे आदमी की भाषा बोलता है। उसके बोलनेके विषयमें सब लोक यत्न करते है, और उल्लू स्वयंही आदमीकी भाषा बोलता है। वरन् बडे कव्वे और घुघुआ तांत्रिक रीतीसे आदमियों करी बोलवाये जाते है।

घुघुआ को बोलवानेकी रीति

उल्लू जोती है उसकी बोलवानेंकी रीति मैं कहता हूँ। एक घुग्घू पकडके लाना। उसका अच्छा खिलाना, पिलाना। फेरि जिस दिन उसको बोलवानेकी जरूरत है उस दिन थोडा गोस खिलाना और बिलायचीका मद्य पिलाना। फेरि एक मंत्र है उस मंत्रसे एक लकडीको मंतरके उसके गुदद्वारमें चलाना। ऐसे करनेसे वह संतापके बोलती है। वरन् वह मरहठी में बोलती है। वह कहती है - ''मेरे नख फलाने काम आते है, मेरे पाँव फलाने काम आते है। मेरी हड्डी फलाने काम में गिरती है,'' ऐसी दस हजार लाखों औषधी उसके आँगमें रहती है। वह अपने एक एक अवयवका और एक एक हड्डीका उपयोग बताती है। वह सब लिख लेना। वह कहती है फलानी हड्डी पाँवके तल्ले धरनेसे आदमी गुप्त होता है। फलाने हड्डीसे सुवर्ण सोनापेटमें गड जाता है। ऐसा वह गलेतक कहती है। गलेके ऊपर कहे तो उसको मार डालना। गलेके ऊपर बोलने दिया तो आदमीको शाप देती है। कहती है ''इतनी देरतक मेरा हुवा अब तेरा सुन। तू पाँच दिनके अंदर मर जावेगा।'' इसमें खटपट करनेहारे आदमी हजारमें दो जीवंत रहते हैं। उसको मारनेपरभी फिर पक्षी संजीवन प्रयोगसे जीवंत करना पडता है। जिस जिस जगहकी हड्डी उसकी निकाली गई, वहाँ सांबरके सिंगके टुकडे करके बिठाय देना और गर्दनको उसका शिर जोड देना। फिर उसको सिद्ध साबर तंत्रमें लिखी हुई रीतीसे जीवंत करना। कव्वाभी बोलवानेका प्रयत्न है वरन् वह अब नहीं कहता हूँ। तो जिस प्रयत्नमें फायदा होवे ऐसाही प्रयत्न करना चाहिये।

हे पार्थ! तू अपने बांधवोंको मारेगा तौभी ये नाशको प्राप्त होवेंगे और नहीं मारेगा तौभी नाशको प्राप्त होवेंगे । जगतमें ऐसी कोईभी वस्तु नहीं है कि, जो नाशको प्राप्त नहीं होवेगी । तपस्या करके इनको चिरजीवी करेगा तौभी नाहीं होवेगा । काहेतें, इनका बांधवपनाही अनित्य है । जितने दिन अपन रहेंगे, हजारो दिन अपन रहे तौभी बंधुवो में बांधवपना रहेगा । जितने दिन अपन उनका प्रिय करेंगे उतने दिन बांधवपना रहेगा और प्रिय नाहीं करे तो बांधवपना नहीं रहेगा। **प्रिय करे तो बांधव है और अप्रिय करे तो शत्रु है ।** संपूर्ण जीव अपने अपने स्वार्थके वास्ते दुसरेको प्रिय करते है । इस विषय में सरित्सागरमें एक कथा है।

कथा : सिद्ध नागार्जुन

एक राजाके पास नागार्जुन नामके सिद्ध तांत्रिक विद्यामें बडे बलिष्ठ थे । नाथसंप्रदायके ये प्रमुख थे । तंत्र विद्यामें बडे कुशल थे । बडे धैर्यवान् थे । तपस्वी थे । बडे महात्मा थे । उदार थे । तंत्रविद्या परोपकारके वास्तेही उन्होने रखी थी । यह राजाके बडे दोस्त थे । इनको ऐसी अभिलाषा उत्पन्न भईकी सब जीवनको दुःखसे छुडानेके वास्ते मृत्यु लोकमें अमृत उत्पन्न करना । इनके **कक्षपुटी** और **संप्रदाय चूडामणि** यह ग्रंथ बनाये हुये है । दुसरा एक ग्रंथ **''मत्स्येंद्र पद्धति किमियागार''** नामका गोरक्षकृत बनाया हुवा है । यह ग्रंथ संप्रदाय में मुखसे कहे जाते है । लिखे जाते नहीं । लिखनेकी शपथ है । श्लोक कभी कोई लिखे तो वह मूक अथवा अंधा हो जाता है । ''संप्रदाय चूडामणि'' अत्यंत बडा ग्रंथ है; उसमें तीन हजार श्लोक है ।

नागार्जुन महाराजने अमृत तयार करनेका उपक्रम किया था । वह देखके इंद्रको चिंता भई और उसने दूत पठाया कि, ''आप अमृत मति बनाईये । आपके अमृत बनावनेसे देवताओंका अपमान होवेगा और वे आपको शाप देवेंगे ।''

यह सुनके नागार्जुन कहते भये, ''देवताओंके शापकी मैं पर्वा नहीं करता हूँ । उन्होंने शापसे मैं भस्म होऊंगा । वरन् सब लोगोंको अमर बनावूंगा ।''

इंद्र उनके शरणमें आया । तब वह कहते भये, ''तुम शरण आये हो तो मैं अमृत नहीं बनाता हूँ परंतु मेरी दो प्रतिज्ञा है । अमृत बनावूंगा, ऐसी पहिली प्रतिज्ञा है और अमृत करता नहीं यह दुसरी प्रतिज्ञा । इन दोनो प्रतिज्ञाको सत्य करनेके वास्ते मैं युक्ति मात्र लिखके रखता हूँ ।''

वह युक्ति **''संप्रदाय चूडामणि''** में ग्रथन करी है । उस ग्रंथमें अमृत करनेकी रीतीके श्लोक रचे है । जो अमृत बनाया जाता था वह उतनाही छोड दिया । वह अमृतीकरण नाथ संप्रदाय में प्रचलीत है और उसी योगसे मत्स्येंद्रनाथ, गोरक्षनाथ, कानीफा ये सब अमर हो गये है । तो यह अमृतीकरण योग नागार्जुन महाराज करते थे; और वे राजाके मित्र थे । राजाकी राणी बडी पतिव्रता थी, और वह उस राजा की अंत्य राणी थी । सबके पीछेसे उसके साथ राजाने विवाह किया था । उस पतिव्रता राणीने नागार्जुन महाराजको प्रार्थना करी कि, ''मेरा पति चिरायु होवे ।''

यह सुनके राजा के मैत्री के बशतें नागार्जुनने उसको रसायन दिया था । उससे उसकी ८०० वर्षकी आयु हुई थी । वे ८०० वर्ष बीतनेपर फिर रसायन देना । फिर राजाने ८०० वर्ष बचना ऐसी वह रसायन थी । इतने कालमें राजाको बहुत पुत्र भये । उनमेंसे कई पुत्र युवराज भये और कई पुत्र मर गये । फिर वह युवराजभी मर गये और दुसरे युवराज भये । ऐसे कई एक पुत्र युवराज भये और मर गये तोभी राजा जैसेके वैसेही थे । ऐसे सैंकडों बरस भये । फिर एक समयमें राणीके ताईं पुत्र भया । वह पुत्र बडा होनेपर युवराज भया । और अपनेकोही अब राजगद्दी मिलेगी ऐसे विचारसे उल्हासको प्राप्त भया ।

वह देखिके राणी मोहवश हो कर पुत्रको कहने लगी, हे पुत्र! तेरे पिताको किसी चांडाल बैदने ऐसा रसायन दिया है कि वह मरता नहीं । तूही उसके पहिले मरेगा । और तेरेको गद्दी नहीं मिलेगी । इसवास्ते गद्दीके आशासे तू आनंदित मत हो । मैं तेरेको एक युक्ति कहती हूँ । तुम नागार्जुन बैदका सिर काटके लावो । राजा उसका मित्र होनेतें शोकसे मर जावेगा अगर बनमें चला जावेगा । फेर तेरेको गद्दी मिलेगी ।''

पुत्र कहता भया ''मैं उस बैदका सिर कैसे काटके लावूं? वह बडा सामर्थ्यवान होनेते युद्धमे मैं हार जावूंगा ।''

राणी कहती भई, ''युद्ध में तू उनको नहीं जीतेगा । तुम ऐसा करो । वह नागार्जुन बडे दानशूर है । उनको तुम शिर माँग लेना । माँगनेसे वह शिर दान देवेंगे ।''

यह सुनकर वह राजपुत्र नागार्जुनके पास गया और नमस्कार करके बैठा ।

महाराज पूछने लगे, ''बेटा ! तेरेको क्या चाहिये?''

उसने प्रार्थना करी, ''महाराज मेरे को शिर चाहिये ।''

यह सुनके नागार्जुन हँसने लगे और कहते भये, ''मेरा शिर लेके तू क्या करेगा?''

यह सुनके वह चुप होगया । फिर नागार्जुनने कहा - ''भला शस्त्रसे मेरा शिर तुम काट लेवो ।

सुनकर राजपुत्रने शस्त्र लिया और शिर काटने लगा । हजारो शस्त्र तूट गये । तोभी शिर नहीं कटा । ऐसे उसको तीन बरस हो गये । तीन बरसके पश्चात् राजा को बात समझी । राजा आये और नागार्जुनको प्रणाम किया, और पुत्रको कहते भये :- ''हे मूर्ख पुत्र! तू बैदका शिर मत काट । काटेगा तो मैं तेराही शिर काट डालूंगा ।''

बैद बोले - ''राजा! पुत्रको सिर काटने दे । तेरे दर्शन वास्तेही मैने तीन बरस सिर न कटने दिया । मैने ९९ जन्मतक अपना सिर दान किया है । यह मेरा १०० वा जनम है । मेरेको सिर दान देने दे ।''

इतना कहकर राजपुत्रको कहते भये - ''मेरा सिर ऐसा नहीं कटेगा । मैं एक चूर्ण देता हूँ ; वह शस्त्रके ऊपर मसकनेसे सिर कटेगा ।''

फिर चूर्ण लाकर शस्त्रपर मसक दिया । तिस शस्त्रसे काटनेसे कमलनालकी नाई शिर तूट पडा । तब राजाने यह देखके उसको शाप दिया कि, ''इसके सब पुत्र जल जावेंगे और यह मेरी क्रिया करेगा तो इसका संपूर्ण कुलक्षय होवेगा ।''

यह शाप देकर राजाने रसायन उतार लेकर गलेको फाँस लगाके प्राणको त्यागने लगा । उस समय आकाशमें देवनकी वाणी भई कि, ''हे राजा! ऐसा साहस मति करो, क्यों कि, नागार्जुन महाराज अब तेरेको नाहीं मिलेंगे । वे सिद्धके गतीको गये है । उनको ज्ञान भी भया है और उनोने दान भी किया है । और उनको वासना कछु नाही रही है । वह मुक्तीको प्राप्त भये । किसीकाभी प्रतिबंध उनको नहीं रहा और उनको पलटानेको अब कोईभी समर्थ नाहीं है । तू भी शोक छोडके ज्ञान मिलाकर ईश्वरमें मिलना ।''

यह देवनकी वाणी श्रवण करिके राजा बनमें चला गया । पीछे नागार्जुनके

पुत्रोंने राजपुत्रको मार डाला । उसकी माताभी उसीके शोकमें सिर पटककर मर गयी ।

इसवास्ते अपना बांधवों में प्रेम करनेका तथा द्वेष करनेका भरोसा नाहीं है । इसी कारणतें महात्मा पुरुष दीनोंपर प्रेम करते है । और भक्त परमात्मापर प्रेम राखते है । ''हे पार्थ! तेरे बांधवोंके ऊपर तेरा प्रेम रहेगा यह नियम नहीं है । तपश्चर्या करके इनको चिरंजीवी करेगा तौंभी तेरा इनोंमें प्रेम हमेशा रहेगा ऐसा नियम नहीं । इसवास्ते शोकका त्याग कर । इस जगतमें अत्यंत अमर कोईभी नाहीं होवे है । जिसकी उत्पत्ति है उसको विनाश है । पूर्वकाल में जो वस्तु नहीं है वह कभी रहती नहीं और जो उत्पन्न हुवा है उस सबका अवश्य नाश होनेहारा है । इस वास्ते यह शोक का विषय नाहीं है ।''

फेरि भगवान्, बालपन, वृद्धपन और तरुणपन इन तीनों अवस्थाओंकी इसी शरीरमें सिद्धी करेंगे वह निरूपण आगामी श्लोकमें कहेंगे ।

000

७

॥ श्री ज्ञानेश्वर माउली समर्थ ॥

दोहा

उमा महेश्वर चरणरज बंदौ वारंवार ॥
मननसहित अब श्रवण करौ कृष्ण बचन सुखसार ॥१॥

आजका निरूपण किंचित् कठिन है । इस कारणसे श्रवणके पश्चात् मनन अवश्य करना चाहिये । काहेतें मननके बिना जो श्रवण करे तो संशय निवृत्ति नाहीं होवे है । साधक-बाधक प्रमाण करिके समन्वयसे मननसहित श्रवण करनेसे सब संशय निवृत्त होते हैं, यह बात ख्यालमें रखना चाहिये । अब तर्कनसे, युक्तीसे तथा अनुभवसे भगवान् फेरि अपने वचनको कहते भये:-

''हे पार्थ! यह आत्मा जो है सो अमर है । मरता नहीं है । इस वास्ते बांधवोंके ताईं शोक करना समीचीन नाहीं है ।''

आत्मा अमर है यह भगवानने प्रतिज्ञा करी है; काहेतें जो वस्तु या जगतमें है याने जो वस्तु दृष्ट और श्रुत है वह परमार्थ-करिके मिथ्या होवे है । यह सिद्ध करनेके वास्ते और चार्वाकनके (मत) निराकरण करनेके वास्ते भगवानने यह

प्रतिज्ञा करी है ।

कल 'सुंदर' को मैने जो निरूपण कहा था उसमें नास्तिकका लक्षण यह बताया था कि, **जिनको खाने को मिलता है, वे ही ईश्वर को नाहीं कहते हैं ।**

संशय : द्विकोटिक ज्ञान

वरन् यथार्थ-करिके यह अंगरेजी राजमें नास्तिक भी नाहीं है और आस्तिक भी नाहीं है । काहेतें, नास्तिक होनेके वास्ते समस्त ग्रंथनका अध्ययन करिके बडा विचार होना चाहिये और आस्तिक होनेकोभी समस्त ग्रंथनका अध्ययन करिके बहुत विचार पूर्वक ज्ञान होना चाहिये । इस कालमें जो नास्तिक या आस्तिक है उनका ज्ञान द्विकोटिक होवे है । **द्विकोटिक ज्ञान को संशय कहते है ।**

अंधेरेमें यह स्थाणु (ठूँठा) है या पुरुष है ऐसा जो संशय होवे है तिसको द्विकोटिक ज्ञान कहते है । द्विकोटिक ज्ञानमें संशय रहता है। किसीको निश्चय होता नहीं है ।

नास्तिक मत विचार

पूर्व कालके नास्तिक बडे विचारवान् थे । उनके चार प्रकार है ।

सौत्रांतिक, माध्यमिक, योगाचार और **जैन** । इन समस्त नास्तिकनमें अनंत भेद हैं ।

कोई ईश्वर और स्वर्ग नरक मानते नहीं है; जगत् सत्य मानते हैं ।
कोई ईश्वर, स्वर्ग, नरक, मानते हैं, पापपुण्य नहीं मानते ।
कोई पापपुण्य मानते हैं, लेकिन स्वर्ग, नरक, ईश्वर नहीं मानते हैं ।
कोई स्वर्ग, नरक, पाप, पुण्य मानते हैं परंतु ईश्वर नही मानते हैं ।
कोई स्वर्ग नरक पाप पुण्य ईश्वर मानते हैं परंतु जीव नही मानते हैं ।
कोई पापपुण्य, ईश्वर, जीव माने है, परंतु स्वर्ग नरक नही मानते हैं ।
और कोई कुछभी नहीं मानते है ।

- इन समस्त नास्तिकोंके मतोंका निराकरण करनेके वास्ते भगवानने प्रतिज्ञा करी है ।

कोई पुरुष चमत्कार के बिना परमेश्वर नाहीं मानते । इन को विचार नहीं रहता है । विचारसे ऐसा दिखता है कि परमेश्वरके बिना जगतमें कोई पदार्थ नाही है ।

चार्वाक

समस्त नास्तिकनका यह मत है कि जो प्रत्यक्ष है वही सत्य है । जो आँखियोंको दिखता- वहीं पदार्थ है । जो न दिखे वह नहीं है; यह चार्वाकनका सिद्धांत है । ऐसे जो नास्तिक होवे है, उनका प्रत्यक्ष प्रमाणके ऊपर पाया है । इनको प्रत्यक्ष होना चाहिये । ऐसे नास्तिकनका खंडन करनेके वास्ते मैं तैयार हूँ परंतु ''बैरी होना पर दाना (दानतवाला) होना, वैसा नास्तिक होना तोभी विचारी होना चाहिये । उनका खंडन करनेके वास्ते भगवानने प्रतिज्ञा करी है । इस प्रतिज्ञामें उनका अभिमान नहीं है ।

काहेतें? अपने दो पैसे है और मेरे पास दो पैसे है ऐसा कहे तो वह अभिमान

नही है । वरन् अपने कने पैसे नही होके 'है' कहना अभिमान है । मैं पहलेही कह चुका हूँ, कि, इस इंगलीश राज में यथार्थ करिके कोई नास्तिक नहिं है । पूर्वकालीन जो **चार्वाक** थे उनका कहना ऐसा है कि -

'' न स्वर्गो नापवर्गो नैवाऽऽत्मा पारलौकिकः ।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः ॥१॥
अग्निहोत्रं त्रयो वेदा त्रिदंडं भस्मगुण्ठनम् ॥
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्मिता ॥२॥
यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥३॥

वे कहते है कि, ईश्वर, नरक, स्वर्ग, मोक्ष यह कुछ भी नाहीं है । सब झूट है । इस जगतमें जो जन्मा है तो खावे, पीवे, और मजा करे । देह तो भस्मीभूत होय जावे । पीछे कौन रहता है । या प्रकारका चार्वाकनका सिद्धांत है ।

समस्त नास्तिकनका आधार प्रत्यक्षपर है । इंद्रियनतें ज्ञान होनेसे प्रत्यक्ष कहते है । अपने मतनमें तथा पारकीय मतनमें यही सिद्धांत प्रचलीत है । आंग्ल मतनमें इसीको परसेप्शन (Perception) याने **इंद्रियार्थ सन्निकर्षज्ञान** कहते है । इसी सिद्धांतके ऊपर वे कहते है -

देहतें भिन्न आत्मा होवे तो वह दिखता नाहीं है । पापपुण्यभी नाहीं है । पुनर्जन्म नाहीं है । ईश्वरभी दिखता नाहीं है । पुनर्जन्म होता तो उसकी स्मृति

रहना चाहिये । कल रोटी खाई थी यह जैसी स्मृति रहती है तैसी पुनर्जन्मकी भी याद रहना चाहिये । वह स्मृति नहिं रहती तातें पुनर्जन्म नहीं है । पापपुण्यभी नहीं है क्योंकि उनकी प्रतीति नहीं होवे है और मरने उपरान्त कुछ भी नहीं रहता है। पुनर्जन्म, पाप, पुण्य, संपूर्ण धर्म, वेद वगैरे सब झूट है ।

''त्रयोवेदस्य कर्त्तारः भंड धूर्त निशाचरः ।
जर्फरी तुर्फरीत्यादि पंडितानां वचस्मृतम् ॥ ''

जिनको खानेको नहीं मिलता था ऐसे मूढ और बलहीन लोगों ने ढोंगसे तीन वेद निर्माण करे हैं, ऐसे नास्तिक कहते है ।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३-२॥

अपने सिद्धांतका यथार्थ करिके निरूपण करनेके वास्ते भगवान् कहते है - हे पार्थ! धीर पुरुष जो होते है वे नास्तिकनके मतोंको भूलके मोहवश नाही होते है ।

नास्तिकों का नियतीवाद

सृष्टिनियम

जे पुनर्जन्म मानते नहीं, प्रत्यक्षही मानते हैं उनको ऐसा पूछना कि ''अगर तुम प्रत्यक्षही मानते हो तो तुम्हारे पिताको पिता था यह काहे परसे? तुम्हारा आजा भी झूटा होना, क्यों कि वह दीखता नही ।''

अबके नास्तिकोने एक नियतिवाद निकारा है । नियतीका अर्थ सृष्टिनियम। इसका मतलब ऐसा है कि, सृष्टी में एक वस्तु होवे तो दूसरी होती है और एक वस्तु नहीं होवे तो दूसरीभी नहीं होना । इसको सहचार (अॅग्रीमेंट)और व्यभिचार (डिफरन्स) कहते है । जहाँ धूम है वहाँ अग्नि है यह सहचार है । जहाँ अग्नि नहीं वहाँ धूम भी नहीं यह व्यभिचार हुवा ।

यह नियतिवाद समीचीन नाहीं है । काहे ते - यह नियती को जाननेहारा कोई है या नहीं ? जैसे संपूर्ण वस्तु सूर्यप्रकाशसे दिखती है, वैसे यह नियती में कोई नियामक होना चाहिये । जड पदार्थमें नियती माने, तो वृक्षादिकभी जड है । फिर पाषाणादिक और धातुआदिक जड पदार्थोसे स्वतंत्र कार्योत्पत्ति होनी चाहिये । फिर पत्थरोंने भी बोलना चाहिये । वायुमात्रसे भाषण होवे ऐसा माने

तो रबर की पुतली में वायु भरके भाषण होवे नहीं । तो ''उसमें मन नहीं होनेतें वह भाषण नही कर सकती'' ऐसा कोई कहे तो मन जड है कि चेतन है? मन चेतन है, जड नहीं है । मन कबूल किया तो आत्माही कबूल हुवा । फिर प्रत्यक्ष प्रमाण कहाँ रहा ?

जड पदार्थ में नियति है यह तू काहेतें मानता है? तेरे को दिखता है यही इसमें प्रमाण है?

दूसरा अगर तू प्रत्यक्ष प्रमाणही मानता तो तेरे को मन है या नहीं? है, तो कैसा है? मन प्रत्यक्ष नहीं दीखता है फिर मन है कायपरसे? सृष्टिनियम प्रत्यक्ष दीखता है । अग्नीसे जलता है, यह हजार दफा देखनेसे मालूम होता है । वैसा अपना मन चीरके नहीं देखा जाता वा फाडके भी देखा नहीं जाता । तो मन जगतमेंही नहीं है ऐसा नास्तिकोंने मानना चाहिये ।

मन को नाही माने तो उस मूढ को पूछना कि, निद्रा में रहकेभी व्यवहार कर । निद्रामें मन लीन होनेसे कुछभी व्यवहार नहीं होता ।

उसको फिर यह पूछना कि, प्रत्यक्ष प्रमाण मानेगा तो सुखदुःखभी नहीं होना क्योंकि वे प्रत्यक्ष नहीं है ।

या जगत्में किसी पदार्थका स्वभाव सुख नहीं है और सुख तो सबको चाहिये और दुःख किसीको भी नहीं होना । जितना प्रत्यक्ष जगत् है तिसमें किसी प्रत्यक्ष पदार्थ का स्वभाव सुख दुःख नाही होवे है और चीटीसे लेकर ब्रह्मदेव तक संपूर्ण जीवोंको सुखकीही अपेक्षा है । अगर इस जगत में किसी पदार्थ में सुख होवे तो वह पदार्थ जितना जितना बढेगा उतना सुखभी बढना चाहिये और वह पदार्थ घटनेसे सुखभी घटना चाहिये । अग्नि बहुत बढे तो जलाय देता है और पानी बढे तो डुबाय देता है । तैसा सुख किसी पदार्थका स्वभाव होवे तो उस पदार्थ का अधिक सेवन करनेसे सुख अधिक होना चाहिये ।

भोजनमें सुख है तो चाहे उतना भोजन कर लेना, वैसा नहीं बनता । अधिक भोजन करनेसे दुःख होता है । फिर कबूल करो कि, भोजनमें सुख नहीं है । मैथुनका स्वभाव सुख होवे तो अत्यंत मैथुनसे क्षय होवे है । अग्नीका स्वभाव उष्णता होनेसे अग्नि बढे वैसी उष्णता भी बढती है । वैसा मैथुनका स्वभाव सुख नहीं क्योंकि अत्यंत स्त्रीसंगतें क्षय होता है । इसवास्ते स्त्रीसंगका स्वभाव सुख

नहीं है ।

मधुर भक्षणका स्वभाव सुख होवे तो शक्कर बहुत खानेसे कडुआ मुँह नहीं होना ।

तात्पर्य :- जो स्वभाव जिस पदार्थका होवे तिसके बढनेसे उसका स्वभाव बढना चाहिये । यह बात एक उदाहरण से संपूर्ण पदार्थों के वास्ते जान लेना चाहिये।

तिसपर भी सुख कोई पदार्थ में है ऐसा किसीका मत होवे तो फेरि कहना । मैं खंडन करनेको तैयार हूँ ।

इस जगतका स्वभाव सुख नहीं होकरभी जो उसमें सुख मानते हैं वे मूर्ख पुरुष अपने आग्रहसेही दुःखको प्राप्त होते है ।

परिमित विषय सेवन करनेसे सुख होता है, ऐसा कोई कहे सोभी बने नहीं, काहेतें, परिमित क्या है? * मनके माने सो परिमित है, * या गणितसे माने सो परिमित है? *शरीर निर्वाह होने पुरताही विषयका सेवन कराना; इसीका नाम परिमित है यह भी सिद्धांत बने नहीं । यह मूर्खताका सिद्धांत है । काहेतें, इसमें अन्योन्याश्रय दोष है । * किसीने कहा, रुपया लाव । रुपये कहाँ है? पेटीमें है । पैटी कहाँ है? तो जहाँ रुपये रखे है वहाँ । * किसीने कहा मोतीरामके घर जाव । मोतीरामका घर कहाँ है ? तो मोतीराम है वहाँ और मोतीराम कहाँ है तो घर है वहाँ ।

ऐसा शरीर काहेसे चलता तो परिमित विषय सेवन करनेसे, और परिमित विषय सेवन काहेको कहना तो, शरीर निर्वाह होने पुरता विषय सेवन करनेको ।

इस लक्षणसे परिमितका निश्चय नाहीं होवे है । हमने पूर्व परिमित शब्दके दो अर्थ करे थे । मनके माने वह परिमित; कि मापन करना यह परिमित? कोई कहे कि रोज दो रोटी खाना यह परिमित है, तो उनको फिर पूछो, दो रोटी खाना परिमित है, या तृप्ति होवे इतना खाना परिमित है? दो रोटी खाना यह परिमित है तो अजीर्ण होने पर भी दो रोटी क्यों नहीं खाता? मनके तृप्तीको परिमित कहे तो परिमितका स्वीकार व्यर्थ है । और मनकी तृप्ति होवे उसकाही नाम सुख कहना चाहिये ।

मनको सुख होवे वही सुख है, याप्रकार करिके इस जगतके दृश्य पदार्थनतें सुख नहीं होवे और उनोंका स्वभाव भी सुख नाहीं है । मैं फेरि फेरि कहता हूँ कि, दृश्य पदार्थनमें सुख होवे तो फिर प्रचोदन करो ।

'फिर भी मैं इसका खंडन करूँगा । यह मेरा अभिमान नहीं है । मेरेसे खंडन नहीं हुवा तो नहीं कहूँगा, परंतु असत्य भाषण नहीं करूँगा । मैं विनोदमें भी असत्य भाषण नहीं करता हूँ ।

सुख मनोमात्र का स्वभाव है । मन दिखता नहीं है और सुख भी दिखता नहीं है । यह नास्तिक तो प्रत्यक्ष प्रमाण मानते है तो इन्होंने सुखकी इच्छा नहीं करनी चाहिये और इच्छा करे, तो फिर आत्माको कबूल किया ।

कदाचित् सृष्टिनियमसेही सब होता ऐसा कोई कहे तो यह बने नहीं । यह रेलगाडी भाफसे चलती है तो उसे चलनेको इतनीही भाप रहना यह भाफ नहीं सिखाती, यह समझनेहारा कोई दुसरा होना । बुद्धिमान् प्राणीही ऐसा कहेगा ।

गणित-केमिस्ट्री के अनुसार

गणित सिद्धांतसेभी यह सिद्ध होता है कि, बुद्धि जानती है, जड नहीं जानता । जगतमें जो पानी बनाया गया वह एक आउंस आक्सिजन और दो आउंस हैड्रोजन मिलनेसे बना हुवा है । 'एच-२-ओ' केमिस्ट्री (H.2.O. - Chemistry) रसायन शास्त्र में **समष्टि प्राण को आक्सिजन** कहते है । **समष्टि व्यान को हैड्रोजन** कहते हैं । **समष्टि उदान को स्टीम** कहते है । जलबाष्प पानीके भाफ को कहते है । **समान** वायुके विषय में सायन्स में विचार किया नहीं है ।

गणित से ईश्वरसिद्धी

तब जड पदार्थनमें बुद्धि नहीं है और बुद्धिबिन गणित नहीं रहता है । जैसे एक, दो, तीन ऐसे तीन पदार्थ है । वे पदार्थ अपनेको नहीं जानेंगे, वरन् बुद्धि जानेगी । अब मैं गणितकी रीतीसे ईश्वर सिद्ध करता हूँ । इसका कोई खण्डण नहीं कर सकता ।

गणित बुद्धि के बिना रहता नहीं । अब जगतमें जब पानी उत्पन्न हुवा, तो वह पानी दो माप हैड्रोजन और एक माप आक्सिजन मिलके बना या नहीं? यह कैसा बना? सृष्टिनियम से बना; ऐसा माने तो आक्सिजन वा हैड्रोजन ये जो जड पदार्थ है, इनको बुद्धि मानना चाहिये; नहीं तो बुद्धिवंत ने बनाया ऐसा

मानना चाहिये। बुद्धिवंत माने तो जीवसे यह बने नहीं क्यों कि जीव अल्पज्ञ है, तो यह बुद्धिवान कोईतो भी जीवसे बडा होना चाहिये। वही हमारा ईश्वर है। इस प्रकार करके धीर पुरुष जो होते है वे नास्तिकनके मतोंको देखिके मोहको नाही प्राप्त होते है। काहेतें, वस्तु प्रत्यक्ष भी हुई तो वह आठ प्रकार के खटकेसे याने प्रतिबंधसे दिखती नहीं। इस वास्ते वह नहींसी नहीं होती।

कारिका

अतिदूरात्सामिप्यात् इन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात् अति-
सूक्ष्मात् व्यभिचारादभिभवात् समानाभिहाराृा ।।१।।

१. अतिदूरात् :- पदार्थ अत्यंत दूर होनेसे दिखता नहीं। यह दूरत्वरूपी खटका है। तुम्हारा पुत्र घर में है, परंतु यहाँसे तो दिखता नहीं; तो क्या वह नहीं कहना चाहिये?

२. सामीप्यात् :- अति नजीककी भी वस्तु दिखाई देती नहीं है। आँखोंमें का अंजन दिखता नहीं। जो मूढ कहे, दिखती, वही वस्तु है, तो अंजनभी दिखना चाहिये। नहीं तो उसके आँखमें अंजन नहीं, कहना चाहिये।

३. इन्द्रियघातात् :- इन्द्रियका घात होना यह भी एक खटका है। कान फूटा होवे तो शब्दको नाहीं सुनता है। यह नास्तिकनका और एक संशय है। वे कहते है कि, हमको नहीं दिखा तो क्या हुवा, किसीको तोभी दिखता है या नहीं? तो उनको ऐसा पूछिये कि दूसरेको दिखा तो तुमको क्या प्रमाण? वे कहेंगे कि, उसका कहना प्रमाण है तो यह शब्दप्रमाण हुवा। प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हुवा। भला, तेरा मन तेरे को दिखता है या नहीं? तेरे को तेरा मन दिखता नहीं; वैसा किसीको भी दिखता नहीं तो फिर मन है या नहीं? मनको कबूल किया तो तू आस्तिक हुवा।

४. मनोऽनवस्थानात् :- अपना ख्याल पदार्थनके ऊपर नहीं रहनेसे वस्तु होकर भी दीखती नहीं। इस वक्त तुम्हारा ख्याल मेरे तरफ था, तो किसीने उधर सरौता बजाया तो तुमको सुनने में नहीं आया।

५. अतिसूक्ष्मात् :- अति सूक्ष्म भी वस्तु होवे तो नहीं दिखती है। भांफ होकर जब जल उड जाता है, तब सूक्ष्म होनेसे दिखता नहीं।

६. व्यभिचारात् :- देर लगनेसे पदार्थ समझता नहीं। जैसा ''घी दे''

इस वाक्यको देरसे कहनेसे अर्थ कब समझेगा? 'घी' कहा आज और 'दे' कहा कल तो घरमें घी होते भी अर्थ न समझनेसे नहीं मिलेगा क्यों कि उसमें देर बहुत हुई।

७. अभिभवात् :- दब जानेसे भी वस्तु दिखती नहीं। जैसे डब्बे में शक्कर रखी तो ऊपर ढक्कन होनेसे नहीं दिखेगी।

८. समानाभिहाराृा :- दो पदार्थ समान होनेसेभी दिखता नहीं। जैसा तुम भी गाते हो और दुसरा भी गाता है और तुम्हारा गला और दूसरेका गला समान होवे तो समझता नहीं।

नास्तिक मत खंडन

ये आठ प्रकारके खटके परमेश्वर समझने में है। परमेश्वर है, परंतु इन आठ खटकों में से किसी प्रकारका खटका रहनेसे दिखता नहीं। इन समस्त युक्तियनके मध्य एक युक्तीका खण्डन कोई नास्तिक नही कर सकता है। इस युक्ति का खण्डन करनेहारा नास्तिक भूतकाल में हुवा नहीं, भविष्यकाल में होवेगा नहीं और वर्तमानकाल में विद्यमान नहीं।

१. वह युक्ति यह हैः-

कौनसा भी पदार्थ **'है'** कहेनेको उसकी पहिचान चाहिये, वैसा **'नहीं'** कहनेको भी पहिचान चाहिये। जिसकी पहिचान नहीं वह पदार्थ है या नहीं है ऐसा कोई भी नहीं कह सकता।

जैसा तुम्हारा छोकरा है। उसकी तुमको पहिचान है। वह छोकरा यहाँ दिखता नहीं इसवास्ते 'नहीं' ऐसा नहीं। वह यहाँ दीखता नहीं, पर है। तैसा ईश्वर नाहीं कहनेवालों को पूछे कि, तुमको ईश्वरका ज्ञान है या नहीं? **है** कहे तो वादही नहीं। **नही** कहे तो ज्ञानही नहीं तो नहीं कैसा कहता? एवं परमेश्वर नाहीं कहनेवाले समस्त नास्तिकनके मतनका खंडन किया।

२. अब जो पुनर्जन्म नहीं मानते और आत्माको नहीं मानते हैं तिन नास्तिकनको खंडन करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं।

जो ऐसे मूढ है कि पुनर्जन्म नहीं मानते उनको पूछे कि, जो तुम पुनर्जन्म नाहीं मानते तो या जगतमें जो जो पदार्थ उत्पन्न भया है, उसको कुछ कारण है या बिना कारण वह उत्पन्न भया है?

जो मूढ कहे कि, बिना कारण ही सब उत्पन्न हुवा तो बिना भोजन तृप्ति होना चाहिये, बिना मैथुन प्रजा होनी चाहिये, या बिना जलपान प्यास जाना चाहिये, ऐसा क्यों नहीं होता? तो कारण मानना चाहिये ।

कारणसे उत्पत्ति है, तो उसको फिर पूछे - कारणसे जो कार्य उत्पन्न होवे तो कैसा होवे? मूल कारणमें शक्ति नहीं होते कार्य होता तो बालुकासे भी तेल निकलना चाहिये या खंभेसे भी भैंस होना चाहिये? वह तो नहीं होती तो फिर कारण में शक्ति होना कबूल करो ।

कबूल नहीं करेगा तर पूर्वोक्त दोष आवेंगे । फिर बालुकासे तेल निकलना चाहिये । तमाखूके बीजसे आमके झाड उगना चाहिये । कोई कहे कारणमें शक्ति है तो दिखती क्यौं नहीं । वह शक्ति कारणमें अभिभूत है, याने छिपी है करके दिखती नहीं । डब्बेमें ढक्कन लगा है तो पदार्थ दिखता नहीं वैसा ।

३. फेरि जो आत्मा नहीं मानते उनको पूछे कि, बालक जब उत्पन्न होता तो उस बालकमें आत्मा है या नहीं? आत्मा नहीं तो दूध पीनेका ज्ञान उसको नहीं होना । बिना आत्मा दूध पीनेकी इच्छा नहीं होती, इसवास्ते आत्मा मानना अवश्य है ।

४. आत्मा को माना तो पूर्वसंस्कार भी मानना चाहिये । पूर्वसंस्कार नहीं रहा तो ज्ञान भी नहीं रहता । यह दुर्गा मालपुआ बनाना नहीं जानती क्यौं कि पूर्व अनुभव नहीं । वैसे पूर्व अनुभव बिना बालक को दूध पीनेकी शक्ति कैसी आवेगी? पूर्व अनुभव बिना शक्ति माने तो, बिना भोजन तृप्ति की नाई, दोष आवेगा ।

कोई कहेगा कि पूर्वजन्म है तो स्मृति है क्या? क्यों नही ? तो उसको हम पूछते है कि बालपन के खेल की तेरतको स्मृति है क्या ? स्मृति के ऊपर ही पुनर्जन्म माने तो अपनेको बालपन के खेल भी याद नहीं आते, तो बालपन भी नहीं मानना चाहिये ।

तात्पर्य, श्रुतिमाता के सामने खडे रहने की किसी की भी शक्ति नहीं है । यह बडे विचारी नास्तिककी बात हुई । सब शास्त्रनको जानके जो नास्तिक भये तिनकी बात हुई ।

आधे नास्तिक का खंडण

अब आधे नास्तिकनका खंडण कहता हूँ । इस इंग्लिश राज्यमें जो नास्तिक है वे समस्त आधे नास्तिकही है । **कोई पूरा नास्तिक होवे तो सामने आना । वाद करनेको मैं तैयार हूँ ।** आधे नास्तिकनकी चमत्कार के ऊपर निष्ठा होती है । उनका सिद्धांत ऐसा है कि, ''चमत्कारसे हम ईश्वर मानेंगे ।''

उनको हम पूछते है कि, चमत्कार नाम काहेका है? जो एक आदमीको आवे उसका नाम चमत्कार है या बहुत आदमीको आवे तिसका नाम चमत्कार है? सर्वथा लौकिक वस्तु का नाम चमत्कार है या सर्वथा अलौकिक वस्तु का नाम चमत्कार है या कोई लौकिक और अलौकिक वस्तुका नाम चमत्कार है? वा सर्व अभावका नाम चमत्कार है? थोडी जगह में जो वस्तु व्यापक है उसीको लोक चमत्कार कहते है । वहीं वस्तु बहुत व्यापक होनेसे चमत्कारत्व नष्ट होवे है, जैसे कृत्रिम बिजलीके दीपक (इलेक्ट्रिक लँप) को देखकर लोक चमत्कारको प्राप्त होते है, वरन् ऐसे हजारो बिजलीके दीपकसे भी सूर्यप्रकाश बहुत बढ कर है । परंतु वह चमत्कार नहीं मानते । काहेतें, सूर्य रोज देखने की टेव पड गई है । तो बडे वस्तुका नाम चमत्कार नहीं है । कोने में पडे हुवे कोई क्षुल्लक वस्तुकाही नाम चमत्कार है ।

भगवान् कहते भये, हे पार्थ तू इन जगतके वस्तुओंको भी जानता है और आत्माको भी जानता है; तो देहके वास्ते शोक मति कर । काहेंतें, जो वस्तु सर्वथा नाशमय है, तिसके वास्ते शोक करने में तात्पर्य नहीं हैं ।

समस्त श्रोतृवृंदको भी मेरी प्रचोदना है कि, जो किसीको सामर्थ्य होवे तो इस बातका एक वर्ष विचार करना और तिसपर भी ईश्वर है ऐसा नहीं समझे तो फिर मेरेको पूछना, नहीं तो ईश्वर को कबूल करना । भगवान् कहते भये- हे पार्थ, ये नाशमय बांधवोंके वास्ते शोक करना तेरेको योग्य नहीं है । काहेतें-

''देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति'' ।।१३-२।।

कौमारं यौवनं तथा वार्धक्यं अस्मिन्नेव लिङ्गदेहे भवन्ति ।
तथा देहान्तरप्राप्तिः अन्यजन्मेऽपि अस्मिन्नेव देहे भवति ।
अतःधीराःन मुह्यतीत्यर्थः।।

पुनर्जन्म की नयी युक्ति

हे पार्थ! या स्थूल देहमें, बालपन, तरुणपन, तथा जरा याने बुढापा जैसे होते, तैसे वासना के वशतें जन्म भी होवे है। फिर पुनर्जन्म की नयी युक्ति कहता हूँ। –

जिस पदार्थका जो स्वभाव है तिस पदार्थके क्षीण होने से वह स्वभाव भी क्षीण हो जाता है। जैसे अपनेको फोडा उठा है तो दुःख देना उसका स्वभाव है, वह फोडा सूखनेसे दुःखभी नष्ट हो जाता है। तैसी वासना शरीरका स्वभाव होवे तो शरीर क्षीण होनेसे वासनाभी क्षीण होनी चाहिये परंतु वैसा नही होता। बुढापेमें शरीर क्षीण होनेसे वासना बढती है। दाँतही नहीं रहे तो भी खाने की वासना बढती है।

तांबूल को खाता है। वह कहता है, ''क्या करूँ? मेरोको दाँतही नहीं। बडे नहीं खाये जाते। लहसुन चबाय नहीं जाती''

ऐसी अनंत वासना बढती है। याने शरीरतें भिन्न वासना है, यह सिद्ध हुवा। शरीर नाश होनेपर भी वासना ज्यौं कि त्यौं रहती है और दुसरे जन्मको कारण होती है। यह जानिके जो धीर पुरुष होते हे, ब्रह्मज्ञानी होते हैं, और मुक्त पुरुष होते है वे इस शरीरके मोहमें पडकर दुःख करते नहीं। तू कहेगा। इन बांधवोंके दुःखनतें मैं कैसा सहन करूं तो यह प्रश्नका उत्तर आगामी श्लोक में कहेंगे।

नास्तिकानां मतं ह्यत्र युक्तिशास्त्रैर्निराकृतम् ॥
श्रीमत्ज्ञानेश्वराख्याय गुरवे तत्समर्पितम् ॥१॥

दोहा

उमा महेश्वर चरणरज सीस धरन अभिलाष ॥
बंदत निवटी वासना सकार्य माय विनाश ॥१॥

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ गीता

फेरि अर्जुनको या प्रकारकी शंका होती भई। वह कहने लगा,''हे भगवन् या रीति मैं आत्माको जानता हूँ।''

अर्जुनका ऐसा अभिप्राय है - ''देहतें आत्मा भिन्न है ऐसे मैं जानता हूँ। काहेतें? आपने जो कह्या तिसीके ऊपर मेरा विश्वास है। आपने प्रत्यक्ष और

अनुमानादिक प्रमाणतें देहतें आत्मा भिन्न बतलाया सो मैं जानता हूँ। परंतु देह तो आत्मा भिन्न जाननेपर भी देहतें जो सुखदुःख होवे है, तिसकी निवृत्ति नहिं होती।''

इस शंकाका उत्तर भगवान् दृष्टांत देकर कहते हैं - ''जैसे तुम भोजन करनेको बैठे हो, और तुमको चरपरा खानेकी टेव पडी है, परंतु उस दिन तुमको मधुर पदार्थ मिले, तो वे भक्षण करनेसे तुम्हारी क्षुधा तो हरण होवेगी। क्योंकि पित्त शमनसे क्षुधा हरण होती है। परंतु भोजनमें रुचि नहीं लगनेसे भोजन अच्छा नहीं हुवा यह मनमें रहेगा। काहेतें? भोजन में रुचि चाहती थी। क्षुधाभी निवृत्त हुई परंतु रुचीमात्रमें इच्छा रही। रुचिकीही पुरुष अपेक्षा करे है।

तैसे ज्ञानमात्रमें अवश्यही मोक्ष होवे है और यद्यपि ज्ञानसे त्रिविध दुःखनकी आवश्यक निवृत्ति होवे है; तथापि त्रिविध दुःखनकी निवृत्ति यह पुरुष नहीं चाहता है। देहको सुख दुःख नाहीं होवे यह चाहता है। देहको सुख दुःख कैसा होता यह उसको नाहीं समझता। **ज्ञानमात्रसे जिन दुःखनकी निवृत्ति नाहीं होती है, ते प्राप्त दुःख नाहीं है।**

क्षुधा-निवृत्ति की बात

जैसे कोई बुखारसे पीडित है और वैद्यने उसको डरा दिया कि तूं मर जावेगा; अथवा अपनेको क्षुधा लगी है पाकभी तयार भया है, तथापि पाँव धोनेके है, और रोटी परोसनेकी है तो पहिले भोजनको बैठना चाहिये, आगे क्षुधा निवृत्त होगी परंतु प्रथम ग्रासमें ऐसा धैर्य आवेगा कि अपनी क्षुधा अब निवृत्त होगी, फिर ग्रास ग्रासमें उसको आनंद होगा। अंतमें उसकी क्षुधा मिट जायेगी। क्षुधामेंही जिसका चित्त रहता है उसको भोजनमें तृप्ति नहीं होती। जिसको दोषजन्य तृषा होवे या भस्मक रोगजन्य क्षुधा होवे, तिस पुरुषका चित्त तृषामें ही या क्षुधामें ही रहता है और जिसको साधारण क्षुधा है उसका चित्त तृप्तीमें नहीं रहता, वरन् उसका ऐसा निश्चय रहता है कि, भोजनकरी क्षुधा निवृत्त होवेगी। ऐसा जो क्षुधावान् रहता है वह ग्रास ग्रास एक एक जब लेता, वैसी उसकी क्षुधा भी निवृत्त होती जाती है; परंतु जिसको भस्मक रोग होवे उसको ऐसा धैर्य नाहीं रहता है। उसको तृप्ति तो होती है पर क्षुधापरही ध्यान रहनेसे उसके मनका धैर्य जाता

रहता है; वरन् जिसका तृप्तीके ऊपरही ध्यान रहता है वह क्षुधाको दबायके भोजनतृप्ति लेता है ।

तैसे ज्ञानमात्रसे त्रिविध दुःखनकी जो निवृत्ति होती है सो एकदम नहीं होती। काहेतें? जिसकी देहबुद्धि नष्ट नहीं हुई याने जिसकी बुद्धि में भेद होवे तो उस देह बुद्धि का जब क्षय होवेगा तबही दुःखनकी निवृत्ति होवेगी । जो पुरुष धैर्यसे प्राप्त दुःखनको सहन करिके, अनागत दुःखनकी अपेक्षा नहीं करे, तिनको परिणाममें सुख होवे है । प्राप्त दुखनको जो सहन नहीं करते, उनकीही निवृत्ति पहिले चाहते, तो उनका परिणाम दुःख निवृत्त नहीं होता है ।

काहेतें? विषयसुख प्रथम उत्तम मालूम होता है; परंतु परिणाम में विषमय होता है । परमार्थसुख जो है वह प्रथम दुःखरूप भासता है, परंतु परिणाम में अमृतके समान सुख देनेहारा होता है । इस कारणतें प्राप्त दुःखनके विनिवृत्तीकी इच्छा मूढ पुरुषही करे है ।

कोई कहेगा कि ''प्राप्त दुःखके विनिवृत्तीकीही इच्छा करना चाहिये; परिणाममें कुछभी होवे'' तो उस मूढ पुरुषको ऐसा पूछना कि ''तू अपने बालकको ताडन क्यों करता? प्राप्त दुःखनकी निवृत्तीके वास्ते या परिणाम में जो होने हारा दुःख है वह निवृत्त करनेके वास्ते?

प्रथम पक्ष कहे तो बने नहीं; काहेतें, परिणाम में सुख नाहीं होवे तो यथार्थ सुख नहीं होवेगा और प्राप्त दुःखनके वास्ते, ताडन करे तो वह बालकके इच्छाके विरुद्ध है, तथापि बालकको मारते समय दुःखही होवेगा, परंतु परिणाम दुःखकी निवृत्ति होवेगी और यह दयाका यथार्थ लक्षण होवेगा । प्राप्त दुःखनकी विनिवृत्ति यह दयाका लक्षण करे तो चपेटादि याने थप्पड वगैरेह मारके दुःखकी उत्पत्ति करने हारा शत्रु होवे है, तो प्राप्त दुःखनकी निवृत्ति करनेके वास्ते थप्पड मारनेवाली माता भी मारनेके योग्य होवेगी । एवं प्राप्त दुःख उत्पन्न करके परिणाम दुःखकी निवृत्ति माता नहीं करेगी तो वह निर्दय होवेगी । जे मूढ पुरुष प्राप्त दुःखनको चाहते नहीं उनको परिणाम सुख नहीं मिलता । जिनको केवल प्राप्त दुःखनकीही निवृत्ति चाहिये ऐसे मूढ पुरुषोने रोग होनेतें औषध नहीं लेना चाहिये । काहेतें ? औषधके कटुतादिक धर्म जिह्वाको दुःख प्राप्त करते है । पिप्पल्यादिकनकी तिक्तता, निंबादिकनकी कटुता ये जो धर्म है तिनकरिके

दुःखकी प्राप्तिही होवे है, परंतु औषधका प्राप्त दुःख सहन नहीं करे, तो रोगनिवृत्तीरूप परिणाम सुख प्राप्त नहीं होवेगा । इस कारणतें प्राप्तदुःखनकी निवृत्ति साधु पुरुष नहीं चाहते है । परिणाम दुःख की ही निवृत्ति चाहते है ।

भगवान कहते भये, हे पार्थ! परमार्थमें प्राप्त दुःख सहन करनेसे तेरेको परिणाम सुख होवेगा । अब शीतउष्णादिक जे भासते हैं ते सहन करने बिना उपाय नहीं है । औषधि का दुःख सहन करने बिना उपायही नहीं है वरन् रोग निवृत्ति अवश्य होती है । रोगनका दुःखप्राप्ती मैं परिणाम होवे है । याने प्राप्त दुःख और परिणाम दुःख दोनो भी रोगनतें होवे हैं । परंतु औषधसे केवल प्राप्त दुःखही होवे है । औषधका दुःखप्राप्तीमें परिणाम नहीं होंवे है । जो परमार्थ में प्रवृत्त होता है, वह प्राप्त दुःखपर लक्ष नहीं देता । उसीको परिणामसुख मिलता है ।

जिनको खाने पीनेको अच्छा मिलता है ऐसे मूढ पुरुषही ईश्वर नाहीं कहते है, यह मैं कह चुका हूँ । ऐसे लोगोंको खानेपीनेकी और कपडेलत्तेकी चैन रहनेसे वे प्राप्त दुःखनको सहन नहीं कर सकते हैं और वे प्राप्त दुःखनको नहीं चाहते हैं वरन् खानेको नहीं मिलता ऐसे दरिद्री पुरुषही दुःखी रहनेसे परिणामसुख चाहते हैं और वे ही परमार्थ में घुसते हैं । ऐसे पुरुषोंकोही परमार्थ सुख मिलता है ।

समझो -एक शक्तिवान् है । वह विष भक्षण करता है । दुसरा एक रोगी है । वह औषध भक्षण करता है । इन दोनों में सुखी कौन है ? रोगीही सुखी है । काहेतें? उसको अवश्यही सुखकी प्राप्ति होवेगी, और जो शक्तिवान् है उसको अवश्यही दुःख प्राप्त होवेगा । याने वह शक्तिवान दुःखी होवे है । कदाचित् कोई कहे कि, प्राप्त दुःख मैं बिलकुल नहीं चाहता, तो मख्खी नाकपर बैठी तो नाकही काट डालना ।

धीर पुरुष

तात्पर्य :- साधु पुरुष प्राप्त दुःखनकी निवृत्ति नहीं चाहते हैं । भगवान् कहते भये - पार्थ! शीतोष्णादिक जे प्राप्त दुख है ते आगमापायी जानकर तू सहन कर । आगमापायी कहनेका कारण आनेके साथही उनका नाश होता है । इसवास्ते सहन कर । धीर पुरुष तिसकोही कहते हैं । जो अविचारसे अपथ्य करे, वह धीर नाही है । विचारसे पथ्य करके परिणाम की और ख्याल देवे वही धीर पुरुष है । प्राप्त दुःख सहन करता और परिणाम दुःख अनुभव नाहीं करता

वह धीर पुरुष है ।

दूसरा जो मूर्ख पुरुष वह प्राप्त दुःख सहन न करिके परिणाम दुःखका अनुभव करे है । परिणाम दुःखही नहीं है ऐसा कोई मूढ पुरुष कहे तो उसको पूछते हैं कि, परिणाम दुःख नाहीं होवेंगे इसमें क्या प्रमाण है? उसको आत्माका निश्चय नहीं भया ऐसा समझना चाहिये । जिसको आत्माका निश्चय भया ऐसा पुरुष मरण जन्मका अनुभव नाहीं करता है । हे पार्थ! **''देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा''** इस श्लोककरी, तेरेको आत्माका निश्चय भया है । तिसकरी प्राप्त दुःखको सहन करना और परिणाम सुखमें निश्चय करनाही तेरेको योग्य है ।

०००

८

श्री ज्ञानेश्वर माउली समर्थ

श्लोक

जटामाहिं जल नयनमों वह्नि विराजे ।
सीस शशी फणी अंग नीलगल छाजे ॥
पाणी त्रिशूल सुनाभ पिनाक सुधारी ।
वाम अंक गिरिजा तिन पग सीस धारी ॥

दोहा

उभा माहेश्वर चरणरज फिरि फिरि बंदन कीन ॥
मनोहारिणी योग्य कहूँ जाते निजपद चीन्ह ॥१॥

संसार दुःख सहन करे

तब फेरि भगवान् कहते भये, हे पार्थ ! प्राप्त-दुःख सहन करना और परिणाम-दुःख हनन करना यही तेरेको योग्य है । बुद्धिवंत जो होते हैं वे प्राप्तदुःखनके ओर लक्ष नहीं देते किंतु परिणाम-दुःखके ऊपर लक्ष देते है ।

जैसा किसीको ज्वर आया होवे और वह वैद्य होवे तो उसी दिन औषध नहीं लेवेगा । काहेतै? ज्वर बहुत करिके क्षीण हो कर सन्निपातपर ले जायगा । भाऊ काकाने ज्वरमें राई लगायी तो वह ज्वर सन्निपातपर ले गया । तो - **संसार दुःख सहन करना चाहिये, और परिणाम दुःख नाहीं होवे, ऐसी**

चाह करनी चाहिये ।

औषधि लेनेसे दूसरे दिन दुःखनाश होता है वरन् औषधिका कटुपन पहिले सहन करना चाहिये । तैसा **परमार्थमें दुःख सहन करना चाहिये । परमार्थमें दुःख सहन नाहीं करे तो भव दुःख नाही जायगा । जितने प्राप्त दुःख आवे उतने जो सहन करता है उसीको गुरुकृपासे भगवानका दर्शन हो कर आनंदकी प्राप्ति होती है ।**

चींटीसे लेकर ब्रह्मदेव तक आनंदकी प्राप्ति चाहते है, परंतु ब्रह्मानंद प्राप्त होता नहीं तब तक दुःख नहीं जाता । इस वास्ते, हे पार्थ ! तू प्राप्त दुःखनको सहन कर । ते प्राप्त दुःख कैसे है? मात्रारूप है? औार स्पर्शरूप हैं । हे पार्थ तू कौंतेय है, कुंतीका नंदन है । कुंती कैसी है? धैर्यवती और पतिव्रता है । ऐसे माताके उदर में तू आया हैं । तब धीर क्यों नहीं पकडता है? शोक काहेको करता है? हे कुंतीनंदन, जातें तेरी माता धन्य है; तातें तूभी धन्य है । इसवास्ते प्राप्त दुःखनको सहन करना तेरेको योग्य है । वे प्राप्त दुःख कैसे हैं तो मात्रारूप है । शब्द, स्पर्श, गंधादिकनको मात्रा कहते हैं ।

शब्द : नाद और अक्षर

जो कानसे सुनी आवे उसको शब्द कहते है । शब्द नयनसे सुनी नहीं आता । श्रोत्र कानका नाम है । शब्दमें दोउ भाग है । एक नादरूप और दूसरा अक्षररूप । नादरूप ध्वनि को कहते है । भेरी, नगारा इत्यादिकनका दड् दड् धूं धूं जो नाद निकलता है उसको ध्वनि कहते है । वह ध्वनि (साउंड) रूप है । दुसरा अक्षररूप जो है उसको अर्थ होवे है जैसे पुस्तक । पुस्तक कहनेसे अर्थ बोध होवे है । लक्कड का खेल बनाया वह अर्थरूप है । ये ध्वनिरूप और अर्थरूप शब्द कानको सुनाई देते हैं । तब कोई निंदा करे अथवा स्तुति करे, तो दोनोभी समान मानना चाहिये।

आदमी परमार्थ करनेको लगेगा तो कोई निंदा करेंगे, कोई स्तुति करेंगे । काहेतें ? एकबुद्धि के लोक नाहीं है । त्रिगुणसे भरे हैं । जैसी नदी भरी चली है तो कोई उसमें कचरा डालते हैं; कोई पूजा करते है । वैसा साधक पुरुष जब परमार्थ समुद्रको मिलने जाता तब उसके ऊपर कोई विष्ठा डालते - कोई स्तुति करते । स्तुति करे वे तेरा पुण्य लेवे और निंदा करे वे पाप लेते हैं । श्रुतिमाता

ऐसाही कहती है -

अथर्वण श्रुति :-

तथा विद्वान्यायपुण्यं विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति ।
तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति
सुहृदः साधुकृत्यान् द्विषन्तः पापकृत्यान् ।।

कौषीतकी उपनिषत् :-

तस्यैतस्य विदुषो पुत्राह्यो वित्तान्
सगृह्णन्ति, तत्सुकृत ।
दुष्कृते विधूनुते तस्य
प्रिया ज्ञातयः सुकृतमुपयन्ति
अप्रिया दुष्कृतम् ।।

जो ब्रह्मनिष्ठ परमार्थी ज्ञानी होवे उसके जो स्वकीय रहते हैं वे धन लेते हैं, जो साधु की स्तुति करनेवाले मित्र रहते हैं, वे उसका पुण्य लेते हैं, और निंदा करते हैं वे उसका पाप लेते हैं । ब्रह्मनिष्ठ पुरुष पापपुण्य दोनो त्यागिके सृदिानंद ब्रह्ममें मग्न होता है ।

जैसा पापसे दुःख होता है वैसा पुण्यसे भी दुःख होता है । काहेतें? लोहेकी बेडीसे जैसा दुःख होता वैसा सोनेके बेडीसेभी दुःखशाली होवे है । जैसे कोई लडकी पाँवमें तोडे डालनेसे खुष होती है, वरन् उसके साथ दुःख भी सहन करने पडता है । तोडे पाँवको घीसनेसे पहिले रक्त निकलता है और फिर बडे बडे घाव पडते है । जब उसको सास पुकारती ''आना जल्दी'' तो तोडेसे पाँव उठाये जाता नहीं ।

तात्पर्यः- जैसे पाप लोहेकी बेडी है, वैसे पुण्यभी सोनेकी बेडी है । पुण्यतें स्वर्ग, वैकुंठ, कैलासादिक पुण्यभोग मिलते हैं । वहाँ भी विषय से जादा नहीं मिलता । कुत्ता कुत्तीके निकट जो विषय भोग लेता है, उसमें और वैकुंठादिकनके विषयभोगमें भेद नहीं है । विषयभोग करनेहारे न होवे, ते श्वान होवे या चींटीयाँ होवे तोभी धन्य हैं । देवलोक जितने प्रेमसे अमृत चखते हैं, उतनेही प्रेमसे श्वान भी विष्ठा भक्षण करता है । विष्ठा देखतेही कुत्ते मुँह घसते हैं वैसेही देवभी अमृत

देखिके मुँह घसते हैं; दोनोमें फरक नहीं है । कल्पना करो कि एक राजा है । तुम्हारे घर मट्टीका चूल्हा है; वैसा उस राजाके घरमेंभी मट्टीकाही चूल्हा होना चाहिये । राजा सोनेका चूल्हा बनावेगा; तो उसका पानी हो जावेगा । वैसा या लोकमें वा वैकुंठ लोकमें विषय दुःख समान है; देवलोकमें जो रहते हैं उनका भजन जो करते हैं तिनकेही ऊपर वे कृपा करते हैं । जो भजन नहीं करता उसको नरकमें डालते है । अपन कैसे हैं? मित्रको खिलाते पीलाते हैं और शत्रुको मारते हैं। फिर अपनेमें और देवनमें फरक क्या हुवा ? विषय दृष्टीसे देव और कुत्ता समान है। वरन् जो वैराग्यशील हो कर समस्त विषयनके ऊपर पाँव देके धन्य हुवा है वही महात्मा पुरुष श्रेष्ठ है। उसकी दृष्टीमें पुरुष, नारी, नपुंसक सब समान दिखते हैं। राग करना, द्वेष करना उसको मालूम नहीं रहता है । वह पुरुष धन्य है। देव कैसे है? तो आदमीओंको उत्पन्न करते हैं और फेरि मार डालते हैं । अपना उत्पन्न किया हुवा पदार्थ मारना बिल्लीभी करती है। वह अपने ब्ल्लो भक्षण करती है । तो फरक क्या हुवा ? विषय भोगमें बिल्ली और देव समान हैं । विषय सुखनके वास्ते वैकुंठ कैलास कहींभी जावो, कुत्ताही होवे है । वह ईश्वर नहीं है ।

साधु-संगति

जिन मूढनको अपनी वृत्ति हाथ में लेने की शक्ति नाहीं हैं वे कितने भी वर्ष साधु संगती में रहें तो सुधरते नहीं हैं ।

पत्थर दूधमें पकावो उसका पाक नहीं होता । राखका दूधमें पाक नहीं होता; धान्यकाही होता है । जे इंद्रियनका नियमन करिके जगतकी निंदा सहन करते और परमेश्वरको देखनेके वास्ते नयन तरसाते हैं उनकोही साधुकी संगतसे फायदा होता है वरन् जे कुत्तेके पुच्छकी नाई टेढेही रहते वे सत्संगतसे सुधरते नहीं । उनको प्रत्यक्ष भगवानका संगभी सुधारता नहिं । दुर्योधन श्रीकृष्णके संगसे नहीं सुधरा । भगवान् कहते भयेः- हे पार्थ! तू मूढ नहीं है । इसवास्ते प्राप्त दुःखनको सहन कर । कोई निंदा करे तो बुरा मति मान । और स्तुति करे तो भला मति मान । कबीर कहते हैं-

'मान करे कोई मुँहपर मारे दोनो उनको प्यारे हैं ।।
वे नर नहीं बारे ।। नहिं बारे ।।धृ.।।''

कबीर कहते हैं वे पुरुष दुनियासे न्यारे परमेश्वर है। कोई पृथ्वीपर मकान बनाते है; कोई पखाने बनाते है, पृथ्वी किसीपर क्रोध नहीं करती। कृपा और क्रोध दोनो जिनके नष्ट भये हैं वेही महात्मा पुरुष श्रेष्ठ हैं।

साधुओंका क्रोध अथवा कृपा जब किसीको दिखती है, तो जीवकेही भले बुरे कर्मका फल है। जो पुण्यवान् है उसको दिखता है कि साधु कृपा करते हैं। पुण्यसेही साधुकी कृपा होती है। कंटक जमीनपर पडे हैं, और उसपरसे दो आदमी चले हैं। एक जूतेसे चला है और दूसरा खुले पैर चला है। तो बिना जूते चलता है उसको काँटे चुभते हैं। जमीन काँटे नहीं फेकती या निकालती, वैसेही सत्पुरुष कृपा और क्रोध नहीं करते। भले आदमीको साधु कृपा करने हारा दिखता है। बुरे आदमीको नहीं दिखता।

चंद्रमाको सब लोक अच्छा देखते हैं; वरन् चोर अंधेरी रातको अच्छा समझते हैं, वे चंद्रमाका द्वेष करते हैं। कब डूबेगा और चोरी कब करनेको मिलेगी, ऐसा उनके मनमें रहता है। चंद्रमा किसीका द्वेष या प्रीति नहीं करता है, वैसा साधुपुरुष भला भी नहीं और बुरा भी नहीं।

इसवास्ते हे पार्थ! कोई निंदा करे या द्वेष करे या प्रकार तू **शब्दमात्रा** को सहन कर। हे पार्थ! **स्पर्शमात्रा** को भी तू सहन कर। निंदा और द्वेष शब्दमात्रासे होवे हैं। उष्णकालमें शीतता प्रिय लगती है। और शीत काल में उष्णता प्रिय लगती है। ऐसे विरुद्ध विरुद्ध विषय पुरुष देखता है। तू उष्णता भी सहन कर, शीतता भी सहन कर, ताप नहीं होवेगा। बखर (हल) बहनेवालोंको शीतउष्णसे सुख दुःख नहीं होता है क्यों कि, उनको टेव (आदत) पड गई है।

जो बडे आदमी होते हैं वे धूप देखनेसे हा! हा! करने लगते हैं। उनको छाता होना। जो स्वतंत्र होवे उसकोही बडा कहना। **''फाटकें नेसावें पण स्वतंत्र असावें''** ऐसी एक मरहठी भाषा में कहावत है।

इंद्रियनके परतंत्र होनेसे परमात्मा मिलता नहीं। हे अर्जुन! तूं **रूपमात्रा** को भी सहन कर। अच्छा रूप बुरा रूप मति मान। स्त्री चंद्रमाकी नाई अच्छे मुखवाली है या कज्जलके नाई मुख कारा है, ऐसा मति मान। सुवर्ण के पात्र में तथा तांबे के पात्र में जल भिन्न नहीं होवे है। घी पीले कटोरी में रखनेसे भिन्न

नहीं होवे है; तैसे सत्पुरुष शरीरकी ओर नहीं देखते हैं। कुरूप शरीरवालेमें वा सुरूप शरीरवालेमें वही परमात्मा है। यातें हे पार्थ! यह सुरूप है करके देखते रहना या कुरूप है करके मुँहपर हँसना योग्य नहीं है। परमात्मा एकरूप है तो हँसना किसको ? या त्यागना किसको ? उत्तम रूपकी स्तुति मत कर। या कुरूपकी निंदा मत कर।

तू **रसमात्रा** को भी सहन कर। कितना भी मधुर अनाज हुवा तो उसका आनंद मति मान। मधुर रोटी कितने दिन खाया तोभी वासना घटती नहीं। मधुर खानेसे अपनें पेटमें क्या सोना होता है? और दूसरे मधुर नहीं खाते उनके पेटमें क्या कीडे होते हैं? इसवास्ते तू रसमात्राको सहन कर।

गंधमात्रा को भी तू सहन कर। गंध नाम वास। फूल का गंध होवे और विष्ठाकी बोय होवे दोनोभी सहन कर। कोई फूलको सुंघावेगा या विष्ठा आँगपर डारेगा तो दोनो समान मान। माता अपने पुत्रकी विष्ठाको सहन करती है। सत्पुरुष के सब अज्ञान बालक है इस वास्ते सहन करना चाहिये। जब अपराध सहन करेगा तबही धन्य होवेगा। हे पुरुषऋषभ -

''यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।१५-२।।

हे पार्थ, तू सब पुरुषन में श्रेष्ठ है वरन् यह मेरेको विचित्र मालूम होता है कि, तू औरतों की नाईं रोता है। औरतोंको रोना आता है और गला निकालके वे रोती हैं। वैसा पुरुष नहीं रोता है। तू सब पुरुषनमें श्रेष्ठ है। तेरे नेत्र में जल नहीं आना चाहिये। तू औरतोंकी नाईं रोता यह विचित्र है। हे पार्थ! रोना उचित नहीं है। संसारमें कौन सुखी है? **जो दुःखनको नाहीं सहन करेगा वही दुःखी है।** किसका संसार अच्छा हुवा है?

वसिष्ठको पुत्रशोक हुवा।
राम विष्णुका अवतार होके बनमें जाना पडा।
राम सरीखा पुत्र होकर भी दशरथ को मरना पडा।
रामसीता का विवाह करनेवाले वसिष्ठही थे तौभी वनवासका दुःख प्राप्त हुवा।
श्रीकृष्णाकी औरतें म्लेच्छ ले गये।

शंकर पार्वतीके पीछे दौडते फिरे । ऋषीके शापसे उनका लिंग गल गया तब नपुंसक हुवे ।

तात्पर्य :- संसारमें दुःख सबको है । तुलसीदासजी कहते हैं:-

पद

करमगत ये टारे नाहीं टरे ॥धृ॥
गुरु वसिष्ठ नारद मुनि ज्ञानी ॥ लिख लगन धरे ॥
सीता को हरण, मरण दशरथ को ॥
बन बन राम फिरे ॥१॥

गुंसाईजी कहते हैं ''करमगत'' याने प्रारब्ध टारनेसे नाहीं टरे हैं । राम विष्णु का अवतार थे, वसिष्ठ महाज्ञानी थे, तौभी रामको बनबास छूटा नहीं, सीताका हरण रावणने किया ।

तात्पर्य :- करम देवनका सहाय लेके भी नाहीं छूटता है । समुद्रमंथन के समय शंकरको विष भक्षण करना पडा ।

''भानुबंशी राजा हरिश्चंद्र ॥ नीचघर नीर भरे ॥''

हरिश्चंद्र राजा सत्वशील था । बालक रोहिदास भी सत्वशील था । तृषा लगनेपर भी धर्मशालाका उदक उसने नहीं लिया । तौभी ''भानुवंशी राजा हरिश्चंद्रको ॥ नीच घर नीर भरे ॥'' तो भी धेडके घर पानी भरनेका प्रसंग आया । डोमा नाम धेडके घर उसको पानी भरना पडा । तुलसीदास कहते हैं :- संसारके सुख दुःख का शोच नाहीं करके, यत्न करना चाहिये ।

यत्न दो प्रकारका होता है । कोई चिंधी फाडना, लकडी तोडना, यह यत्न करते है, कोई रोटी खानेके वास्ते यत्न करते है । इसमें कौनसा अच्छा है? रोटी खानेका ।

संसार विषयक यत्न अच्छा नहीं है । तातें दुःख होवेगा । हे पार्थ! तू परमार्थका यत्न कर । **संसार छूटा नहीं तो धीरे धीरे छोडनेका यत्न करना ।** फेरि तुलसीदास कहते भये :-

''तुलसीदास हो वा नहीं सही हो ॥
काहेको शोच करे ॥ करमगति०॥

याने तुलसीदासजी कहते हैं- मिले, या न मिले, शोक करनेका प्रयोजन नाहीं

है । हे पार्थ! या प्रकार जिनको सुख और दुःख समान है तिनकेही वास्ते मोक्ष फल है । वेही मोक्षके विभागी होते है ।

सुंदरदास कहते है:-

कर्म अकर्म करे पापहूं न पुण्य ताको ।
कर्म न विकर्म करै भाव न अभाव धरै ।
शुभ न अशुभ परे यातें निछर कहैं ॥
वसती न शून्य जाके पापहूं न पुण्य ताके ।
अधिक न्यून वाके स्वर्ग न नरक है ।
सुखदुःख सम दोऊ, नीचहूं न ऊँच कोऊ ।
ऐसी विधी रहै सोऊंमि ज्यो न फरक है ।
एकही न दोय जाने, बंध मोक्ष भ्रम माने ।
सुंदर कहत ज्ञानी ज्ञानमों गरक है ।
सुंदर कहत ज्ञानी ज्ञानमों गरक है ।

''**कर्म न अकर्म करे**'' उनको पुण्य कर्म करने की अभिलाषा नहीं रहती है । कछु करे तौभी उनका न करनाही है ।

''भाव न अभाव धरे'' उनको प्रेम भी नहीं रहता और द्वेष भी नहीं रहता है ।

''शुभ न अशुभ वाको'' वह पाप भी नहीं करता है और पुण्य भी नहीं है ।

''बसती न शून्य वाको'' यहाँ बहुत आदमी बैठे है । इसवास्ते यहाँ बैठना अगर जंगलमें (बनमें) जाके बैठना ये दोनो भी भाव उसको नहीं रहते है ।....

यह बडा यह छोटा वह देखता नहीं है । जैसे दस तोलेका, पाँच तोलेका और दो तोलेका ऐसे तीन गहने सुवर्णके तुम सराफ के यहाँ ले गये; तौभी वह तीनों मिलके समस्त सोने का मोल करेगा । अलंकार बडा है या छोटा है यह नहीं देखेगा । यद्यपि, यह बडा यह छोटा देखता नहीं, उसको सब परमात्माही दीखता है ।

''अधिक न न्यून वाको'' - स्वर्ग और नरक, यह नीच है, यह चांडाल है, यह ब्राह्मण है, यह भेद उसको नहीं रहता । चांडालके हृदयमें परमात्मा है वैसा ब्राह्मणके हृदयमें भी परमात्मा है । जैसा गंगा में सूर्यका प्रतिबिंब पडा और मोरी में सूर्यका प्रतिबिंब पडा, वरन् सूर्यको दोनोका भी स्पर्श नहीं भया वैसा

परमात्मा भिन्न नाहीं है । परमात्मा ब्राह्मण भी नहीं है और चांडाल भी नहीं है, इसवास्ते साधुपुरुषको ऊँच नीच कोई नहीं है । इसवास्ते उसको सुख दुःखभी नाहीं होवे है । वही परमेश्वर में मिला ।

परमात्मा कहते हैः- हे पार्थ! संसारबंध झूठा है वैसा मोक्ष भी झूठा है । काहेतें? बालक जब रोता है, उसको माताने कहा, ''हाबू'' आया । छोकरा चुपचाप रहता । फिर माताने कहा, अब मत डरो ''हाबू'' मर गया ।

तो हाबू आया और मर गया ये बालक को सत्य है परंतु माता के दृष्टी में वह पहिले ही नहीं था । तो अब मरेगा कहाँ? वैसा वह जीवरूपी बालक इस संसारमें पडा है और सुखदुःखसे चिल्लाता है । उन दुःखनतें छूटने के वास्ते श्रुतिमाता ने मोक्ष का उपदेश कऱ्या है । यथार्थ करिके एकही वस्तु भरी है । वहाँ बंधनही नहीं है तो मोक्ष कहाँ? जबतक मातापन नाहीं प्राप्त हुवा; तबतक मोक्ष सत्य मानना चाहिये ।

तात्पर्य :- सत्पुरुष जो होते है वे सुखदुःखन को न मान के ज्ञान में ही गरक रहते है ।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।१।। गीता

झूठी वस्तु का ही नाश होता है । सत्य वस्तु का नाश नहीं होता यह परमात्मा आगामी श्लोकमें कहेंगे ।

०००

९

श्रीमत्सद्गुरु ज्ञानेश्वर माउली समर्थ

अलकावतीपति चरण सरोरुह शीस धरूं अति आदरते ।
आतम और अनातमका अविवेक मिटे जिनके डरतें ।।
देखन लागूं तब दीखन लागत एकही ब्रह्म समस्तन में ।
दृष्य अरु दर्शन भेंटि मिले नहि चित्त उदौ अरु अस्तन में ।।१।।

दोहा

उमा महेश्वर पादुका धरी हृदय अविकार ।।
कांतवचन भाषा कहूँ मनोहारिणीसार ।।२।।

श्लोक

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ।।१६-२।।

अध्यास : भ्रांति

गद्यः- फेरि उपसंहार करके किंचित् कहता हूँ । फेरि परमात्मा कहते भये- हे पार्थ! अपने बांधवों के विषय में **'ये बांधव मेरे है' या बुद्धि को तू धारण करता है, यह तेरे को भ्रांति हुई है ।** भ्रांति अध्यासतें होवे है । अध्यास नाम एक वस्तु के ऊपर दूसर वस्तु का भास होना । सो अध्यास आगे भी स्पष्ट होवेगा । अब भी किंचित् निरूपण करता हूँ ।

अपने वेदांत शास्त्र में अध्यासवादही अत्यंत समीचीन है । ब्रह्मज्ञान और वादतें होवे नहीं । भगवान् शंकराचार्याने शारीरक भाष्यमें अध्यास वादका यथार्थ करिके निरूपण कऱ्या है । भ्रांति से एक पदार्थ दूसरा दिखना अध्यास कहते है। जैसे अंधेर`में जेवरीके ऊपर सर्पकी प्रतीति होती है; और तहाँ सर्प रहता नहीं किंतु जेवरी ही रहती है, याका नाम अध्यास है ।

भगवान् कहते भये, हे पार्थ! तेरेको जो यह प्रतीत होता है कि, बांधव मारनेसे मैं डूब जावूंगा यह अध्यास है । वास्तव में आत्माका और किसी पदार्थका संबंध नहीं है । यद्यपि संबंध माना जावे और ऐसा कोई कहे कि, ''आत्मा का और पिता, पुत्र, बंधु आदिनका संबंध है'' तो उसको पूछें कि ''यथार्थ करिके आत्मा का और किसी पदार्थका संबंध होवे तो किस प्रकार होवे? * यथार्थ होवे वा *कल्पना मात्र उपजे है?

तहाँ प्रथम पक्ष तो बने नहीं । काहेतें? **जिसका जिसके साथ यथार्थकरिके संबंध होता है, तिसका तिसी पदार्थके साथ विरोध कदाचित् भी होता नहीं ।** जैसे यह जल है; और या जलमें दूध डाले तो दूधका और जलका संबंध होवेगा । दूधका जलके साथ और जलका दूधके साथ नाश नहीं होवेगा । अग्नी में डारोगे तो जो अधिक होवेगा वह दूसरेका नाश करेगा । अग्नि अधिक होवे तो दूधका नाश करेगा और दूध अधिक होवे तो अग्नि का नाश करेगा । इसपरसे यह विज्ञात होता है कि, **जिसके साथ जिसका यथार्थ करिके संबंध होता है तिसका तिसके साथ विरोध बने नहीं और जिसका जिसके साथ विरोध है,**

तिसका तिसके साथ संबंध संभवे नहीं ।

जैसे मत्स्य और पानीका संबंध यथार्थ है उनका विरोध कदापि संभवता नहीं । प्रकाश और अंधार इनका कदाचित् भी संबंध संभवे नही ।

सांसारिक संबंध

हे पार्थ! अब हम तेरेको पूछते है कि, तेरा जो तेरे बांधवोके साथ संबंध है वह यथार्थ है या नहीं? यथार्थ है कहेगा तो पूछते हैं कि यथार्थ संबंध कैसा? यथार्थ संबंध होवे तो कदाचित् भी विरोध नहीं होना । अपन और अपनी औरत दोनों में जो संबंध है वह यथार्थ है या नहीं? यथार्थ संबंध है तो जारिणी स्त्रीका भी विरोध नहीं होना चाहिये । जारिणी स्त्री को शत्रु मानते हैं, पतिपत्नीका, पानी मछलीके सरीखा संबंध होवे तो शत्रुता नहीं होनी चाहिये । मातापुत्रमें यथार्थ करिके संबंध होवे तो पुत्र यदि मातासे संग करे तो शत्रुता नहीं होनी चाहिये । पिताका और कन्याका संबंध यथार्थ होवे तो कन्या का ब्याह नहीं करना चाहिये । ऐसाही -

बांधवोंका संबंध यथार्थ नहीं है । जब तक प्रिय करे तब तक अच्छा समझते हैं । प्रिय नाहीं करे, तो संबंध तोडनेको देखते हैं ।

पुत्र मातासे संग करनेकी इच्छा करे तो माता पुत्र को निकारनेकी इच्छा करती है । तातें, हे पार्थ! बांधवों का और आत्माका यथार्थ करिके संबंध नहीं है, किंतु कल्पनामात्र करिके संबंध है ।

फेरि भगवान् कहते भये - हे पार्थ! संबंध जो कल्पनामात्र है, यथार्थ करिके नहीं तो वह संबंध तोडनेको भी यथार्थ साधन होना नहीं । जैसा संबंध है तैसाही साधन होना । सपनेमें शेर अपने अंगपर दौडते आया तो सपनेमेंही उसको बंदूक से मार डारेंगे ।

या प्रकारकरिके कल्पनामात्र संबंध कल्पनामात्र साधनसेही तोडना चाहिये । यह संपूर्ण बांधव जो अपनेको अप्रिय होवेंगे तब इनका संबंध नहीं होवेगा । इनसे आत्मा में यथार्थ संबंध नहीं है, होवे तो निद्रा में माता, पिता दिखना चाहिये । यदि यथार्थ संबंध होवे तो सपने में बाध नहीं होता । जिसका यथार्थ संबंध होता है उसका बाध कभी नहीं होता ।

जैसे तुम हो । मास्तर भये । तुम्हारा मास्टरीसे यथार्थ संबंध है या

कल्पनामात्र है? जनमसेही मास्टरी का तुम्हारा संबंध नहीं तो यह संबंध यथार्थ करिके नहीं । तथा बांधवोंका और आत्माका यथार्थ संबंध नहीं है; कल्पनामात्रही है । वह तोडनेके वास्ते कल्पनामात्रही साधन लेना चाहिये ।

सपनेमें शेर (पिछे) लागा तो सपनेके बंदूकसेही मारना चाहिये तथा सपने में रोग हुवा तो सपनेके वैद्यसेही उसकी निवृत्ति करना चाहिये । बाजीगर इंद्रजाल विद्यासे मंत्रका साँप बनायके जब खेल करते हैं, तब वह खेल मिटानेके वास्ते इंद्रजाल विद्याही उपयोगमें पडती है । अथवा कोई एक पुरुष अंधेरे में चलते चलते उसको काँटा गडा और भ्रम हुवा कि साँप है और उस भ्रमतें उसको लहरें आने लगी तो ऐसे पुरुषके ताईं मंत्र कछु नहीं करता । यद्यपि विषका परिणाम उसको हुवा, मुखसे लार आने लगी तौभी उसको शंकासे विषबाधा भई; इसवास्ते यथार्थ मंत्र से उसकी निवृत्ति होती नही । शंका जाननेसेही उसकी निवृत्ति होती है । या रीति देखो तो इन बांधवोंका संबंध कल्पनामात्रही है । तातें सुखदुःखकी प्राप्ती भी कल्पना मात्रही है ।

या जगत् में मनही जितना सुख दुःख देनेहारा है, इतना कोई भी पदार्थ सुखदुःख नहीं देता ।

हे पार्थ! चित्त के सिवाय दूसरा सुखदुःख देनेहारा नहीं । अग्नि यदि दुःखही देने हारा होवे तो सब काल दुःखही देना चाहिये वरन् ठंडकालमें अग्नि प्रिय लगता है ।

तात्पर्य :- **प्रियता या अप्रियता चित्तके धर्म है ।** चित्तके धर्मनका अग्नि में कल्पनामात्र संबंध जोडते है । यथार्थ करिके अपने हृदय में रागद्वेषही सुखदुःख देनेहारे हैं ।

जैसे तुम्हारा नाम दामोदर है और हमारें गांवमें उसकी कन्या मरी तो तुमको दुःख नहीं होवेगा और अब कल्पना करो कि, वह कन्या मरनेके पहिले तुमको ब्याह दी थी और फिर मरी, तो तुमको दुःख होवेगा । ऐसा क्यों? तो जब तक उस कन्यामें अपनापन नहीं था तब तक उसमें प्रीति नही थी । इसवास्ते वह मर जानेतें दुःख नहीं हुवा । जब प्रीति भई तो मर जानेतें दुःख हुवा ।

दुसरा उदाहरण :- पूना या बंबईमें प्लेग है । तुमको उसका डर नहीं

है। तुम खुशहाल हो । परंतु प्लेग नजीक आया तो डर होवेगा । क्यों कि वह अप्रिय है । अप्रिय होनेसे चित्त में प्लेगका द्वेषही दुःख देने हारा है । साँप जगन्नाथमें हुवा तो दुःख नहीं होवेगा; घरमें निकला तो दुःख होवेगा । तो **राग द्वेष चित्त में नाहीं होवे तो कदापि सुख दुःख नाहीं होवे है ।**

कपिल गीतामें भगवान् कहते है-

''उदकेन भवेत्पंकं स च तेनैव शुद्ध्यति ।
मनः करोति वै कर्म मनसैव हि शुद्ध्यति ॥''

कीचड काहेसे है? उत्तर - पानीसे ।

धोये काहेसे जाता है? - पानीसेही ।

तैसे मन जिस विषयका संबंध मानि लेता है वह छोडे बिना संबंध निराकरण नहीं होता । बांधवों में तेरा कल्पनामात्र संबंध है वह तूही निराकरण करेगा तब छूटेगा । कितनाही बडा बैद होवे और शंका विषपर त्रैलोक्यचिंतामणीकी मात्रा देवे तो वह मात्रा भस्ममेंही जावेगी । वैसेही पितापुत्रादिकनका कल्पनामात्र जो संबंध है वह ईश्वर भी होवे तो छुडानेमें समर्थ नहीं है ।

शंका :- अफीम के तलफ में अफीम के बदले मट्टीका गोला दिया तो तलब जाती है तैसा मंत्रसे शंकाविष क्यों नहीं जाता?

समाधान :- शंका विषमें आदमी बेशुद्ध नहीं हुवा और उसके सामने मंत्र डारनेसे यद्यपि शंकाविष दूर हुवा तौभी उसकी शंका दूर होनेसेही बाधा दूर हुई। क्यों कि वह यथार्थ सर्प नहीं था । शंका विषसे बेशुद्ध हुवा आदमी मंत्रसे नहीं सुधरता । उसकी शंकाही दूर होनी चाहिये ।

वैसा - **संसार बंधनसे छूटा और मुक्त भया वह मुक्त नहीं है । तीनों काल में अपनेको बंधही नहीं था ऐसा यथार्थज्ञान जिसको हुवा वही मुक्त है ।**

नाथ कहते हैं :-

''पुण्यभ्रमें स्वर्गप्राप्ती । पापभ्रमें नरक होती ।
देहभ्रमें मोक्ष म्हणती ॥ मुक्त तो अति भ्रमू ॥१॥

कोई ब्लांको (बागुल) हाबूका डर बतलानेसे वह डरता है और वह मर गया कहनेसे डर छोडता है । ब्लांको उसका होना या मरना सच मालूम पडता है । परंतु माता के दृष्टि से वह हुवा भी नहीं और मरा भी नहीं । वैसा -

जिसको बंध सच है उसको मोक्षभी सत्य है । जो बंध सत्य नहीं मानता उसको मोक्ष भी मिथ्या है ।

बागुलाचेनि मरणें । तोषावें कीं बाळपणें ।
येरा तो नाहींच मा कोणे । मृत्यु मानावा ॥

- अमृतानुभव.ज्ञानेश्वरकृत

हे पार्थ! या प्रकार करिके कल्पनामात्र संबंध तेरेबिना दूसरा छोड नहीं सकता है ।

निरूपण का मनन

कल्पनामात्र संबंध प्राणायाम योग करिके छोडेंगे तो बने नहीं । कल्पनामात्र बंध छोडना योगते बनें नहीं यह बात पक्की ध्यान मों रक्खो और इसका मनन करिके दृढ निश्चय करो । **निरूपण का मनन नाहीं करेगा तो श्रवणका फल व्यर्थ होवेगा ।** निरूपणका अभ्यास मनन करिके ही होवे है । मनन न करे तो हजार वर्ष भी श्रवणतें लाभ नाहीं होवे है ।

कोई एक ने बारा बरसतक रामायण का श्रवण किया उस में सीताका हरण होने की कथा उसने सुनी थी । उसके कान भी ऊँचे थे । तिनको श्रवणसे ऐसा कुछ अपरोक्ष ज्ञान होता था । यह श्रोता महाशय एक दिन पुराणिकको बोलते भये कि

''महाराज! सीता का हरिण भया तो फिर उसकी सीता बनी कि हरिण ही रह गया?''

तात्पर्य :- बिना मनन करनेवाले जो है तिनके विषय में हमारा निरूपण नाहीं है । काहेतें ? बिना मनन किये हमारा निरूपण व्यर्थ होवेगा ।

हे पार्थ! कल्पनामात्र जो संबंध है; वह योगयाग, यज्ञ और भक्तीसे मिटावे नहीं क्यों कि, योगादिक साधन शारीरिक हैं । वे कल्पनामात्र संबंध को मिटावे नहीं।

उदा.:- कल्पना करो कि अंधेरेमें जेवरी (रत्नमाला) के ऊपर सर्प दिखा । उसको मारनेको दंड ले गये और पीटने लगे तो सर्प मरेगा क्या? क्यों कि वह एक कल्पनामात्र है । कल्पना मरेगी, तभी मरेगा ॥ ''स्वाराज्य सिद्धि '' मे कहा है :-

अविद्याह्येष बंधो विरमति न विना वेद न कर्मजालैः ॥
मीलोद्भूतोऽहिरस्तं व्रजति ननु मनो ....

भगवान सुरेश्वराचार्य कहते हैं ''जेवरीके ऊपर सर्प दिखा तो उसके ऊपर मंत्र डारे, उसको डंडे मारे, तो नहीं जाता वैसे यह बांधव मेरे है यह संबंध मनसे रचित है । कल्पना मात्र संबंध योगादिकनसे नहीं जाता है । कल्पनाही निवृत्त होनी चाहिये । काहेतें?

जिस पदार्थके प्रति अपनेमें रागद्वेष होता है तातें ही सुखदुःख होता है । याप्रकार भागवत में भगवान ने भिक्षु की कथा कही है ।

कथा : कृपण ब्राह्मण की

अवंती नगरीमें एक ब्राह्मण था । वह आदौ बहुत कृपण था । मधुकरीका भी अन्न बेचकर धन जमीन में गाड रखता था । अपन भी नहीं खाता था और दूसरें कों भी खानेको नहीं देता था । जगत् में जितने पाप हैं उतने समस्त पाप करिके उसने पैसा जमाय रक्खा था । छोकरेछाकरे को भी नहीं देता था । आखिरमें उसकी औरत भाई के घर पैसा ले कर गई और जो थोडा बहुत रहा था वह पैसा और सामान नौकर वगैरह लोक चुरा ले गये । यह अकेला रह गया । फिर उसने संन्यास लिया और बस्तीमें भिक्षा माँगने लगा । सब लोक उसके मुँहपर थूकने लगे । दुःख भया ।

उसने बिचार किया यह दुःख मेरे को काहे के वास्ते होता है । दूसरों से मैने जो धन लाया था वह गया । धन के विषय में काहेको दुःख करूँ? ऐसा जब विचार किया तब इतना भी पापी होकर उसको वैराग्य हुवा । **अनंत जन्म पुण्य करके भी विषय में वैराग्य होता नही ।** वह वैराग्य भिक्षु को हुवा । तब उसने माना कि ईश्वर अपने ऊपर प्रसन्न हुवा ।

काहेतें? जे पुरुष यज्ञ करिके पुण्य संपादन करते हैं वे बारा बारा बरसतक ब्रह्मचारी रहते हैं और इसका फल क्या? तो रंभादि वेश्याभोग । जैसा अमृतका दान किया और उसका फल बासी रोटी । वैसे यज्ञमें ब्रह्मचारी रहके उसका फल स्वर्ग में रंभादि भोग करना । तो अनंत जन्मपुण्य करिके भी विषय में वैराग्य नाहीं होवे है । विषय में वैराग्य नाहीं होवे तो, देवभी होवे तो, कुत्तेसे नीच होता है । कुत्ता भलते काल में स्त्रीसंग नाहीं करता । किन्तु विष्णु ने

39

जालंदर दैत्यको मार डारा, और उसके वृंदा नाम स्त्रीके साथ संग किया । ऐसा विष्णु कुत्तेसे भी नीच है । काहेतें? कुत्ता जातके बिना बिल्ली के ऊपर नहीं चढता । विष्णु देव होकर दैत्य स्त्रीके साथ संग किया । कुत्ता कुत्तीके ऊपरही चढेगा । गद्धा गद्धीके ऊपरही चढेगा । कुत्ता या गद्धा धर्म को बिघाडता नहीं । विष्णु अपनी जातीकी स्त्री छोडके परस्त्री संग करके उसके पतिव्रताधर्मका विघात किया । इसवास्ते तुम्हारे विष्णु कुत्ते से भी नीच हुये । विष्णुने जब मोहनी स्वरूप धारण किया, तब शंकरका वीर्य गल गया । उन्होने जाना नहीं कि मोहिनीरूप विष्णु है; ऐसी कथा सब पुराणों में है । जों विषयवासना होवे तों शंकर होवे वा विष्णु होवे, तोभी तुच्छ है । जो विषय वासना नहीं होवे तो कुत्ता भी धन्य है। पुराणोंकी कथाओं से तात्पर्य लेना चाहिये ।

जब माता पुत्रको कहती है कि- ''हे मूढ! फलानेका पुत्र कितना शहाना है, वह माताका मानता है । वैसा तू क्यौं नहीं मानता है?''

ऐसे जब पिता व माता कहती है; तों उस पुत्र के ऊपर माता का प्रेम नही है क्या? प्रेम है अपने पुत्र में त्याग करना तात्पर्य है । अगर इसका विपरीत तात्पर्य कोई माने तो माता ने अपने पुत्र को विष देना चाहिये और दूसरे पुत्र को घर में लाना चाहिये ।

पुराण कथाओं का तात्पर्य

जिन मूढन को तात्पर्य-ज्ञान सहकारी नहीं है, उनको यथार्थ ज्ञान होवे नहीं । शंकर का लिंग गल गया । विष्णु ने वृंदासे संयोग किया । इन कथाओं का विषयसेवन तात्पर्य नहीं है । इसका तात्पर्य यह है कि,

देवनको भी विषयों मे ऐसा दुःख हुवा तो हम तो जीव ही है । हमारी गति कैसी होवेगी ? ऐसा विचार करिके विषय त्याग करना तात्पर्य है ।

यदि कोई कहे कि देवनकी भी ऐसी गति हुई तो हम तो जीव है । हमको विषय कैसे छूटेंगे ? तो यह कहना समीचीन नहीं ।

इसको दृष्टान्त :-

गंगाधर का आजा था । वह भँवरा-मक्खी से मर गया । तो गंगाधर या दादाने भी भँवरामोहाल के तरफ जाना चाहिये । काहेतें? भँवरामोहाल से बाप मरा तो ये भी जाना चाहिये । वरन् ऐसा तात्पर्य नहीं है । विषयका संबंध नहीं

होना यह तात्पर्य है । विषय में डूबके मरना यह तात्पर्य नहीं है । विषयवासना होवे तो विष्णु-शंकर भी तुच्छ है ।

वैराग्य : यत्नरूप और ज्ञानरूप

विषयवासना नहीं होना, यही वैराग्य है । वैराग्य दो प्रकार के है ।

एक तो यत्नरूप और दूसरा ज्ञानरूप ।

यत्नरूप वैराग्य काहेको कहते है? विषय सामने नही राखिके दूर जाना, छोड देना यह यत्नरूप वैराग्य है और – विषय सामने भी होवे तो भोगकी इच्छा नहीं होना, यह **ज्ञानरूप वैराग्य** है ।

यत्नरूप वैराग्य में भय रहता है । ज्ञानरूप वैराग्य में भय नहीं रहता है, वरन् बाघ पिंजरेसे छुटा तो मारेगा यह डर रहता है । किन्तु चित्र में बाघ रहा तो उस को नहीं डरते हैं; क्यौं कि वह कुछ भी नही करता । वैसा विषयको सत्य देखिके वैराग्य होवे तो वह यत्नरूप वैराग्य है ।

यत्नरूप वैराग्य में विषय से दूरही रहना चाहिये । नजीक आनेसे फँसनेका डर रहता है । जब चित्रके माफिक विषय मिथ्या देखता तो डर नहीं रहता जैसा मृगजल पीने की इच्छा कोई भी नहीं करे है । पहिले यत्नरूप वैराग्य होना चाहिये । फिर ज्ञानरूप वैराग्य होगा ।

तात ज्ञानरूप वैराग्यका वर्णन ऐसा करते हैं :-

दोहा :- नाशिवंत जब जानिये समस्त यह संसार ।
तब छोडे न विरक्तता पीठमात्र आधार ॥

जो यह संसारको अनित्य देखे तो वैराग्य आप होके पीछे लगता है ।

ओवी :- तैसी संसारा या समस्ता । जैं जाणिजे अनित्यता ॥
तैं वैराग्य दवडितां । पाठी लागे ॥ अ.१५.ज्ञानेश्वरी

या प्रकार करिके ज्ञान, वैराग्य होनेपर कितने भी विषय समीप होवें तो मोह करें नहीं । कोई विषयवासनारूप बद्ध शृंखला में जब पडते हैं तब उनको वैराग्य होता है ।

जैसे भिक्षु था । उसको वासनाबद्ध हो कर वैराग्य हुवा तो उसने संन्यास लिया । संन्यास लेनेपर उस को लोगोंने मारना, उसके बाल जलाना, रोटी खानेको बैठा तो उसके आँगपर मूतना, विष्ठा डालना, उसके सीरपर थूकना,

तौभी वह नहीं बोलता था ।

काहे तें? वह इतना शांत भया कि किसीको बोलनेकी जरूरत नहीं थी । जिस विचारतें वह शांत भया था वही विचार लोगोंको कहता था ।

सत्पुरुष जो होते हैं वे अपने विचार दूसरेको कहते हैं फिर कुछ भी होवे । तुकाराम महाराज कहते है:-

न मिळो खावया न वाढो संतान । परी हा भगवान कृपा करो ॥१॥
ऐसी माझी वाणी मज उपदेशी । आणिका लोकांसी हेंचि सांगे ॥२॥
विटंबो शरीर होत कां विपत्ती । परी राहो चित्तीं भगवान ॥३॥

भिक्षु अपन जैसा करता था वैसा लोगोंको भी कहता था । भगवान् कहते भये कि वह भिक्षु धन्य है । इतना भी वह पापी था पर मैं भी उसकी कथा गान करता हूँ । जब बहुतेरे लोक उसको दुःख देने लगे तब उसको वैराग्य हो कर यह गीत गाने लगा :-

''नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवतात्मा ग्रहकर्मकालः ।
मनः परं कारणमामनन्ति संसारचक्रं परिवर्तयेद्यत् ॥१॥

जैसे तुम संसारी हो; तुमको पुत्रको संसार सिखानेका हक है, वैसा साधुओं को भी दीनोंपर दया करनेका हक है ।

भिक्षु कहने लगा जन सुखदुःख देने हारे नहीं है । काहे तें? मेरी देह भी पाँच भूतोंसे बना हुवा है, और जनोंके देह भी पंचभूतोंसेही बने हैं । मैं भी माता के उदर में पैदा हुवा और जन भी माता के उदरतेंही पैदा हुये, पानी में उत्पन्न नहीं हुये । इस वास्ते वे मेरेही जाती के है । एक जाति के सुखदुःख देने हारे नहीं होते है ।

अब देवता भी सुखदुःख देवे नहीं । कैसे? तो देवता देवलोक में है । मैं मनुष्य लोक में हूँ । देवता बिनापराध नहीं सताते ।

आत्मा भी नहीं सताता । क्यों कि आत्मा मेरे हृदयमें है वैसा सब लोगोंमें भी है ।

ग्रह भी सुखदुःख देने हारे नहीं हैं । ग्रह सुखदुःख देनेहारे होते तो निद्रा में भी सुखदुःख देना चाहिये ।

कर्म भी सुखदुःख नहीं देता है । कर्म सुखदुःख देनेहारा होवे तो मै

इतनाभी पापी हूँ तौभी मेरेको सुख है । सुखदुःख कर्म का फल है, तो स्वप्नमें भयी ब्रह्महत्याका जागृति में प्रायश्चित नहीं है । मैने कर्म नहीं किया तो जबरदस्तीसे कर्म सुखदुःख नहीं देते हैं । मैं ही कर्म करता हूँ । काल भी सुख दुःख नहीं देता । मेरेमें शीत उष्ण सहन करने की शक्ति रही तो शीत उष्ण बाधा नहीं करेंगे ।

तात्पर्यः - जन, देवता, आत्मा, गृहादिक सुखदुःख देने हारे नहीं है; वरन् मेरे चित्तमें जे रागद्वेष है वे ही सुखदुःख देने हारे है; काहेतें? मन जिसको प्रिय कहता है, उस में सुख मानता है; और अप्रिय कहता है, उस में दुःख मानता है । जब तक चित्त की निवृत्ति नहीं होती, तब तक वैकुंठ कैलास में भी सुख नहीं है । कडवा औषध से दुःख सहनही करना चाहिये । रोग दूर जावेगा तो कडुवाँ औषध भी बंद पडेगा । काँटा गडा, तो निकारनेका दुःख सहन करना चाहिये ।

इस वास्ते हे पार्थ! परमार्थ में दुःख सहन कर । सत्पुरुष प्राप्त दुःख सहन करते हैं । **प्राप्त दुःख सहन करनेसे परिणाम दुःख प्राप्त होता नहीं ।** तेरा कल्पनामात्र संबंध जो बांधवों में है वह किसी उपायसे नहीं छूटता । वासना क्षीण करनेसे वह संबंध छूट जावेगा । जो या कल्पनामात्र विषय में तू शोक को प्राप्त होता तो भगवान् भी कुछ नहीं कर सकता ।

जो कोई चिल्लाता रहे कि, मैं मृगजल में डूबता हूँ तो कौन सत्य मानेगा । प्रतिबिम्बको पानीमें देखिके मैं डूबता हूँ, ऐसा कोई मानेगा तो उसको कौन निकारेगा? माया सत्य होती तो भगवान् निराकरण करते ।

सपनेमें रोग हुवा तो उसका निराकरण करनेको सपनेकाही बैद होना चाहिये । वैसा तेरा संबंध तेरेकोही छोडना चाहिये । सत्यवस्तु का कभी भी नाश नहीं होता है । सत्य और असत्य का विवेक करिके या अध्यासको त्याग देनेसेही तेरा संबंध छूटेगा । यह सत्य और असत्यका विवेक आगामी श्लोकमें कहेंगे ।

इति शम् ।

श्री ज्ञानेश्वर महाराजार्पणमस्तु ॥

41

१०

॥ श्री ज्ञानेश्वर माउली समर्थ ॥

दोहा

यदुपति चारु चरणकमल बंदौ वारंवार ॥
कांतबचन भाषा कहूँ सुनत षडरिसंहार ॥१॥

फेरि भगवान् कहते भये - हे पार्थ! या रीति करिके तेरेमें तेरे बांधवोंका संबंध कल्पनामात्र होनेसे कल्पना निवृत्तिसे ही उसकी निवृत्ति होवेगी । स्वप्न में रोग हुवा तो स्वप्नके औषध से ही उसकी निवृत्ति होवेगी । राजा मंचकपर सोता हुवा पडा है, और स्वप्नमें उसको शेरने काटा तो बंदूक धारण करनेहारे सिपाई उपयोगमें नहीं आवते । वहाँ स्वप्न की सामग्रीही उपयोग में पडेगी तैसी कल्पित संबंधकी निवृत्ति कल्पनामात्रसेही होवेगी ।

बांधव कल्पनामात्र काहेतें ? उसका कारण इस श्लोक में कहते है -

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६-२॥

संपूर्ण गीताका अर्थ समझनेपर भी इसी श्लोक का अर्थ तुम्हारे पास रहेगा । भगवान् कहते भये - हे पार्थ! तू यथार्थ तत्त्व जानता है या नहीं ? जो द्वंद्वज पदार्थ होते हैं जैसे प्रकाश और अंधार, शीत और उष्णता वे परस्पर विरोधी होते है। प्रकाश है वहाँ अंधार नहीं है । शैत्य है वहाँ उष्णता नहीं है । जनन है वहाँ मरण नहीं है; मरण है वहाँ जनन नहीं है । परस्पर विरोधी पदार्थ एक स्थान में एक काल रहते नहीं हैं । सत् और असत् यह परस्पर विरोधी है । जो तू कहता है कि ''ये मेरे बंधु, माता, पिता आदिक बांधव है ।''

तो तेरेको हम पूछते हैं कि ''इनकी उत्पत्ति काहे तें भयी है? सत्य से वा असत्य से?'' - जगत् में दो ही पदार्थ है । सत् और असत् । कदाचित् भी जिसका नाश नहीं होता वह सत् है । कदाचित् भी अपनेको प्रतीत नहीं होता; दीखता नहीं, वह असत् है । वंध्या का पुत्र, खरगोश का सींग, आकाश का फूल, ये असत् हैं। आत्माका नाश नहीं होता है । सर्वदा आत्मा दिखता है । शरीरका नाश होता है । अपन सर्वदा है । आत्मा सत् है ।

भगवान् कहते हैं – सत् पदार्थकी उत्पत्ति बनती नहीं । उत्पत्ति हुई तो अवश्य नाश होवेगा । आत्मा की उत्पत्ति माने तो नाश मानना चाहिये । नाश माना तो आत्माका नाश कौन जानता? इस पुस्तक को फाड डारा तो मैं जानता हूँ ।

आत्माका नाश ?

'आत्माका नाश होता है'' ऐसा कोई कहे तो तिस मूढको पूछें कि, आत्माका नाश कौन जानता है? आत्मा से भिन्न पदार्थनमें जानने की शक्ति नहीं है । वे जड हैं । आत्माके नाशको आत्मा कैसा जानता ? एक आत्मा जानता कि दूसरा कोई आत्मा जानता?

कोई कहे ''मेरी माता वंध्या है'' तो उस मूढको तुम जूता ले के कहेंगे ''तू कैसा पैदा हुवा?''

कोई कहे ''मेरेको जीव है या नहीं ?'' तो उसको मूर्ख समझना चाहिये । अपनाही नाश कोई कैसा जानता? ऐसा बोलना व्याघात् है । एक आत्मा का नाश जानने हारा दूसरा आत्मा है, उसका नाश तिसरा जानेगा और तिसरेका नाश जाननेको चौथा होना ऐसी अनवस्था हुई । इस वास्ते कोईतोभी आत्मा पकडना पडता । तो एकही आत्मा क्यों नहीं मानना? इस वास्ते आत्मा की उत्पत्ति नहीं । एकही आत्मा है । इस बातका जो मनन नहीं करेगा तिस मूढ पुरुषको यम के हाथ में जाना पडेगा ।

तेरे माता, पिता, बांधवादिक सत् है या असत् है? ये माता, पिता, बंधु उत्पन्न नहीं भये है । सत् वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती और जो वस्तु सत् रूप नहीं है उसके मरने का भय नहीं होना चाहिये । तेरे बांधव असत् है तो असत् पदार्थ की कदाचित् भी उत्पत्ति नहीं होती । असत् पदार्थ की उत्पत्ति माने तो आकाश फूलकी भी उत्पत्ति होनी चाहिये । कोई कहेगा आकाश फूल नहीं है तो मन में नहीं आना? इसका उत्तर यह है कि, मन तो आता तो दूसरा फूल मनमें आवेगा और वह आकाश को लगा है ऐसी कल्पना मन में आवेगी । लेकिन गगन का फूल मन में कभी नहीं आवेगा क्यों कि, जो पदार्थ कही भी जगत्में नहीं ऐसा पदार्थ मन में नहीं आता । अपने कंधेपर बैठना अपने मनमें नहीं आता । इसको संस्कृत भाषामें **''स्वस्कंधारोहण''** कहते है ।

वेदांतका अर्थ समझावनेके वास्ते संस्कृत शब्दनके संस्कारबिना, और भाषा निःशेष करिके समर्थ नहीं होती । शास्त्रनके अनुसार अधिकारियोने ज्ञान मिलाना चाहिये किंतु कौन से अधिकारियोंके वास्ते कौन सा साधन उक्त है यह प्रकरण ग्रंथमें आता है । तो या असद्रूप पदार्थकी कदाचित् भी उत्पत्ति संभवे नहीं । इस कारण तें तेरे माता पिता बंधु सत्रूप नहीं और असत्रूप भी नहीं है । जो पदार्थ नाहीं है उसका विचार कहाँ? सत् पदार्थ तो है ही है, तेरे बांधव कौन रूप है? असत् वा सत् ? दोनो भी नहीं है तो कल्पना मात्र है । कल्पना सत् और असद्विलक्षण है । मृगजल सत् कहे तो तृषा नही जाती । वह भासमात्र है । तू बांधवों के वास्ते शोक करता तो मृगजल पात्र में भरने में आग्रह क्यों नहीं करता? मृगजल जितना मिथ्या है उतनेही बांधव मिथ्या है । तू कल्पनामात्र में इच्छा मानेगा तो स्वप्नमे भी यही मिलेगा । तू ये बांधव स्वप्न में भी मिलाय सकता है । तेरे सरीखे बुद्धिमान पुरुष कल्पनामात्र वस्तु के वास्ते शोक को नाहीं प्राप्त होते है । जैसे किसी चोरने अपना पैसा ले गया तो अपन कहेंगे हाथपाँव सलामत रहे तो और भी कमायेंगे । तैसी वासना सलामत रही तो बांधव भी कमा लेंगे । एक स्वप्नको दृढ कर लिया तो चाहे सो बांधव मिल जावेंगे । अपना पुत्र मर गया तो वह जीता रहनेसे जितना आनंद मिलेगा उतनाही आनंद उस पुत्रको स्वप्नमें उत्पन्न करके स्वप्न दृढ करनेसे मिलेगा । अपनेको जिन पिता पुत्रादिक बांधवो में प्रेम है उनको स्वप्न में उत्पन्न करके वही स्वप्न दृढ करनेसे इधरका शरीर चला जावेगा , और स्वप्नशरीर दृढ हो कर अपने प्रिय बांधवों को स्वप्नमें भी मिलावेगा । तातें हे पार्थ! कदाचित् तेरेको यह बांधव प्रिय लगते हैं, तो इन दुष्ट बांधवों को मार डार और कल्पना कर कि ये सब सत् है । ऐसा स्वप्न दृढ करनेसे तेरे को सब अच्छे बांधव दिखेंगे ।

- इति शम् ।।

।। श्रीमत् सद्गुरु ज्ञानेश्वर महाराजार्पणमस्तु ।।

०००

११

॥ श्री ज्ञानेश्वरमाउली ॥

दोहा

हिमनगजापति नामको रटन करो दिनरात ।
शब्दशक्ति त्यजिके करो जीव पति एक साथ ॥
उमापत महादेवकी जय । वृंदापति नंदलालकी जय ॥

तब फेरि परमात्मा कहते भये - हे पार्थ! बांधवों के विषय में शोक को प्राप्त होना तुमको उचित नहीं । शोक करनेके वास्ते अवश्य अप्राप्त वस्तु चाहिये । तेरेको तो बांधव सुलभ है। अप्राप्त नहीं है। यथार्थ करिके बुद्धिमान पुरुष सुलभ वस्तु के विषय में शोक करते नाहीं । काहे तें? - जो ये तेरे बांधव है वे सुलभ होनेसे शोक के विषय नहीं, ये तेरेको मालूम है । सुलभ वस्तु के वास्ते कोई शोक करता नहीं । बांधव अप्राप्त वस्तु नहीं है । फेरि वह ही संसार प्राप्त भया है ।

अब परमात्मा गूढ तत्त्वोंको निरूपण करते भये । या जगत्का जो कल्पनामात्र संबंध तेरेको कह्या था वह तेरेको याद है या नहीं ? तू जो अपने बांधवों के वास्ते शोक करता है उसमें क्या हेतु हैं? इनको जो तू बांधव मानता तो क्या हेतु है? तू इनके शरीरों को बांधव मानता? या अंतःकरणको मानता? या इनसे जो तेरी संबंधिता है, उस संबंधिता को बांधव मानता ? या बांधवकी स्मृतिमात्रता बांधव है? इतनी बातों में तेरे शोक में क्या विषय है?

जो बांधवमात्रता शोकका विषय होवे तो बांधवमात्रता कोई पदार्थ नहीं है । उसकी प्राप्ति संभवे नहीं । प्राप्ति संभवे नहीं तो अप्राप्ति संभवे नहीं । इस वास्ते बांधवमात्रता कोई पदार्थ नहीं है । जो शरीरके विषयमें शोक करता हो, तो बांधवों के शरीर जिन द्रव्योंके बने है, तिन द्रव्योंके शत्रु के भी बने है । तो शत्रु के शरीर भी शोक के विषय होना चाहिये । इस वास्ते **बांधवोंका शरीर** शोक का विषय होवे नहीं ।

जो तू कहेगा कि, **बांधवों का आत्मा** शोचनीय है, तो यह बात अनुचित है ।

काहे तें ? - तेरा आत्मा भिन्न नहीं है । मैं जन्मा हूँ, मरा हूँ, तिसको तू आत्मा कहता तो देहको आत्मा कहता है । देह को आत्मा कहने से फिर पूर्वोक्त दोष प्राप्त होते है । ''देह आत्मा है'' इसका खंडण युक्ति द्वारा होता है । देह आत्मा है, यह ज्ञान किसको होता है? देह को होता है तो प्रेत में वह निर्धार दिखता नहीं । जीवंत देह में या प्रकार का निर्धार रहता है ऐसा तू कहेगा, तो फिर वही प्रश्न है कि, वह निर्धार कैसा रहता है? ऐसा ही उत्तर है तो प्रश्न के शब्द ही पलटा के उत्तर दिया है ।

जैसे पिता बालक को कहे- 'तेरी मा को कहना, रोटी ला.'

तो बालक ने उत्तर दिया - 'तेरी मा को कहना, रोटी ला'

यह प्रतिध्वनि मात्र उत्तर हुवा ।

'तू कौन है?' तो ''तू कौन है?'' वैसा मैं आत्मा हूँ इस का जीवंत देह ही निर्धार करता यह प्रतिध्वनि मात्र उत्तर है । या तें उत्तर नहीं कहतें है । प्रतिध्वनि मात्र उत्तर तें कार्य होवे तो मूढ को भोजन भी नहीं मिलेगा । किसीने पानी माँगा-'पीनेको पानी देव, तो पीनेको पानी देव ।' रोगीने बैदको कहा- 'औषध देव, तो बैदने कहा औषध देव ।' तो ऐसे प्रतिध्वनि मात्र उत्तर तें किसी का समाधान नहीं होवे है ।

देह को आत्मा माने, तो उसको पूछे कि - 'प्रेत में आत्माका निर्धार क्यों नहीं?' प्रेत जीवंत नहीं तो देहतें भिन्न आत्मा कबूल किया । देहतें भिन्न आत्मा न मान के उस का नाश कबूल करेगा तो तू नास्तिक भया । चार्वाक कहते कि, देहतें भिन्न आत्मा नहीं । **''भस्मीभूतस्य शरीरस्य पुनरागमनं कुतः''**

फिर तेरे मतनमें मरणकी सिद्धि ही नहीं । मनुष्य के मरनेपर प्रेत कदापि नहीं दिखना चाहिये । देहका गुणमात्र चैतन्य आत्मा है तो देह रहे तब तक गुण की हानि नहीं होना चाहिये । शक्कर रहे तब तक मधुरपना रहता है । जहाँ तक जल हैं तहाँ तक पतलेपना का नाश नहीं होता । तैसा देह रहे तबतक आत्मा भी रहना चाहिये । इस वास्ते मरण की सिद्धि नहीं ।

तो देह को आत्मा कहते है तिन को मेरी माता वंध्या कहने हारे के नाई अनंत व्याघातनकी प्राप्ति है । जो तू हठ करिके देह को आत्मा कहेगा तो हम भी हठ करिके देहतें भिन्न आत्मा कहेंगे । देह बोलता चलता है, यह अपने देह-

आत्मा हठको तूं प्रमाण मानेगा तो, निद्रा में देह अचेतन रहता है, यह हमारा हठ प्रमाण है । तात्पर्य :- कछुभी होवे और कितना भी आग्रह करे तो आत्मा देह से भिन्न है, यह सिद्ध है ।

तातें हे पार्थ! बांधवों का आत्मा शोक का विषय नहीं है । हे पार्थ! जो तू बांधवों के **अंतःकरण** को शोक विषय माने तो तेरा ही अंतःकरण शोक का विषय होता । नहीं तो बांधवोंका अंतःकरण तेरे वास्ते क्यों नहीं शोकवान् होता है?

तू कहेगा, **बांधवमात्रता** मेरे शोक का विषय है, तो बांधवमात्रता क्या है? तू कहता - ये मेरे बांधव है- तो इस से बांधवमात्रता का भिन्न स्वरूप नहीं है? भिन्न कहेगा तो बांधवपन का क्या स्वरूप है? तो, ये मेरे बांधव है इस कल्पना को छोड देव और ये मेरे बांधव नहीं ऐसी कल्पना कर के बांधवमात्रता को त्यागिके शोक का त्याग कर ।

काहे तें? हे पार्थ! तू विचारवान् है । अविचारी जो होते है वे ही कल्पनामात्र सुख के वास्ते शोकवान् होते है । जैसे कोई निर्धन पुरुष को सपने में धनका हंडा मिला उतने में औरत ने उसको पुकार के जगाया - तो वह कहने लगा - हर हर, यह क्या किया? काहेको हाँक मारी? ऐसा कहके वह पुरुष शोक करने को लगा। वह मूढ पुरुष सपनेके धनमें भी जो शोकवान् हुवा तो ऐसे अविचारी मनुष्य को सुधारनेका उपाय नहीं है । वह मूढ पुरुष चाहेगा तो दस दस दिन सपन दिखेगा । स्वप्न में भी जो भोग की इच्छा करते है; तिनके वास्ते उपदेश नहीं है । **जो भोगन में दोष देखते है, वे ही उपदेश को प्राप्त होते है ।** फेरि वही संचार प्राप्त भया ।

विषयभोग में जो सुख होता तो बिल्ली के और विष्णु के भोग समान ही है। बिल्ली के विषयसुख में और विष्णु के विषयसुख में फरक नहीं है । विष्णु अथवा शिव जितना विषय में गरक है उतना बिल्ली कुत्ता भी विषय में गरक है । बिल्ली, कुत्ते यद्यपि विषयनकी इच्छा करते है तो भी वे पूजा नहीं चाहते है । पशु यद्यपि विषय सेवन करते है तो भी डरसे उनको विषय की आशा कम रहती है और विष्णु शिव में जो विषय की आशा रहती है वह मालक के दहशत से कम नहीं होती है, क्यों कि, वे ही जगत के मालक है । तात्पर्यः- विषयकी इच्छा

यह कल्पनामात्र वस्तु भयी ।

श्रुति में कह्या है कि या पुरुष को पूर्ण विद्या, जवानी, सुंदर रूप , बल, सुंदर स्त्रियाँ, सप्तद्वीपवती पृथ्वीका राज इतना जो प्राप्त होता है तब तिस को **मानुषानंद** कहते है । मानुषानंद से शतगुण अधिक **पितरोंका आनंद** होवे है । उस से शतगुण अधिक **गंधर्वानंद** है । गंधर्वानंद से शतगुण अधिक **कर्मदेवानंद** होवे है । स्मृतिनमें कहे हुये कर्मनको करिके जो देव हुये तिन को कर्म देव कहते है । कर्मदेवन से सौ गुन **आनंद आजानज देवनका** होवे है । श्रुतिनमें कहे हुये कर्मनको करिके जो देवयोनि को प्राप्त भये तिन को अजानज देव कहते है । आजानज देवनसे सौ गुन **आनंद प्रजापति का** होवे है । ब्रह्माजी ने सृष्टि उत्पन्न करनेके वास्ते जो पुत्र उत्पन्न करे है उनको प्रजापति कहते है । प्रजापति से सौ गुन **ब्रह्मदेव का आनंद** होवे है । ऐसे एकसे एक अधिकाधिक आनंद है । ये सब आनंद लेशमात्र है । ब्रह्मानंद/आत्मानंद का लेश मात्र ये सर्व आनंद है । लहसुन का हाथ धोनेके पीछे जो लहसुन का गंध रहता है वह लेश है । महाराजा चक्रवर्ती से ले कर जो आनंदरूपता है वह ऐसी ही लेश मात्र है ।

काहे तें? ब्रह्मलोक में अपने वास्ते प्रीति होती है । ब्रह्मलोक में जो आनंद है वह अपने आनंद तें क्षीण है, यह अनुभव तें सिद्ध है । ब्रह्मलोक का आनंद अपने प्रेमके नाईं प्रिय नहीं है, न्यून मात्र है । आत्मा सबको प्रिय है । आत्मानंद दृष्टि देखे तो ये संपूर्ण आनंद ब्रह्मानंद से लेश मात्र है । यह श्रुति तैत्तिरीय ब्रह्मोपनिषदनमें है ।

सो कुत्ते के और ब्रह्मा, विष्णु के भोग में समानता नहीं ऐसी शंका नहीं करना । आनंद की अधिकता जो श्रुति में कही वही सत्य है, ऐसा तात्पर्य नहीं है । कुत्ता स्त्री -संग करे तो उसको वीर्यपतन काल में जो किंचित् सुख होवे वह आनंद और ब्रह्मा और शिव के वीर्यपतन का आनंद उतना ही है । कुत्ते का और उन का आनंद समान है । तो श्रुति का क्या अर्थ है? बह्मानंद ही एक सेवनीय है, यह श्रुति का तात्पर्य है । विषयानंद के वास्ते यह तुलना नहीं करी है । वरन् ब्रह्मानंद सेवन करनेके वास्ते यह उपमा है ।

बालक को सीख

उदाहरण - कोई माता बालक को बचपने में सिखाती है -

माता - बालक! देव को नमस्कार करना ।
बालक कहता - देव कहाँ है?
माता - सरग में ।
फिर बालक - जननी देव कहाँ?
माता - ऊपर सरग में ।
बालक - माढीपर चढनेसे सरगको हाथ लगेगा ?
माता - नहीं । माडी से भी ऊँच - बुर्ज से भी ऊँचा है ।
बालक - झाड पर से हात पहुँचेगा ?
माता - झाड पर से भी ऊँचा है ।
बालक - मैं बैठा हूँ वहाँ से कूदनेसे देव यहाँ आवेगा ।
माता - नहीं, वहाँ से भी ऊँचा है ।

इस में जननीका मतलब यह है कि, देव यहाँ नहीं आ सकता तो सबसे बडा है । इस में जननी का तात्पर्य है । वैसा श्रुतिमाताका तात्पर्य ऊँचे ऊँचे आनंद को लेने में नहीं है, वरन् ब्रह्मानंद की कल्पना करावने के वास्ते श्रुति ने ऊँचे ऊँचे आनंद को कह्या है । तातें - जैसा तिस बालक को माता ने कहा ''देव यहाँ नहीं आवेगा'' तो मरने से ही मिलेगा ऐसी कल्पना नहीं करना चाहिये । वैसा विषय सेवन करने मैं श्रुति माता का तात्पर्य नहीं है - किंतु ब्रह्मानंद से सब आनंद तुच्छ है ऐसा वैराग्य करानेके वास्ते श्रुतीने यह ऊँची ऊँची कल्पना कराई है ।

तातें - हे पार्थ! जो तू विचारवान् होवेगा तो एक ब्रह्मानंद के बिना और संपूर्ण विषय में शोक मत कर । काहे तैं ? इतर आनंद सुलभ है । ब्रह्मलोग का ध्यास लगा तो, स्वप्न में हीब्रह्मलोक प्रतीत होवेगा । जैसा स्त्री का ध्यास लगनेसे स्वप्न में स्त्री प्रतीत होती है तैसा, ब्रह्मलोक भी प्रतीत होवेगा ।

तात्पर्य :- ये संपूर्ण आनंद भावनामात्र है । वैदिक कर्म करे बिना भी भावना मात्र भोग होते है । तातें - तेरे बांधव के विषय मैं शोक मत कर । जो तू कहेगा कि, बांधवों की मेरे को स्मृति है, या जन्म में वे मेरे को मिले है, ताते

मैं शोक करता हूँ । तो पूर्व जन्म के बांधवोंके विषय में काहे तें शोक नाहीं करता है? तू कहेगा कि उन की स्मृति नहीं तो स्मृतिमात्रही शोक है, यह सिद्ध हुवा । तो बांधवोंकी विस्मृति करना शक्य होने तें, तू शोक मति कर ।

इस रीति करिके देखिये तो हे मूढ, तेरे सरीखे प्रेमी होवे तो स्मृतिमात्र ही प्रेम करे! भूल गया तो प्रेम नहीं करे! हम द्वारका को गये और तू हम को भूल गया तो हमारी भी याद नाहीं करेगा! फिर हम कैसा विश्वास राखे कि यह आवेगा और मरने के समय पानी पिलावेगा? और अनंत पुरुष जे मर गये तिनो के विषय तू काहे तें शोक नहीं करता है?

हमारा अपराध

'मैं, जों, बांधवों को मानता हूँ' यह अध्यास ही मेरे शोक का विषय है, ऐसा विचार तू क्यों नहीं करता है?

किसी पदार्थ को अपना मान बैठा, तो यह तेरा ही अपराध है ।

अपने अपराध जान के दूर नहीं करे तो वह पहिले हननीय है । कौरवों के पहिले तेरा ही हनन करना चाहिये ! काहे तें ? कौरवोंके अपराध का फल मिलेगा परंतु तू युद्धसे निवृत्त होना अपराध नहीं समझता है; और तेरे अपराध को दूर नही करता है । साधु अपराधी मात्र पुरुषनको शाप नहीं देते है । गवा, पशु, पक्षी ये अपराधी है । साधु को बिच्छू, मक्खी काटे तो शाप नहीं देते है ।

जे अपना अपराध जान करिके निवृत्त नाहीं होते है, तिनको शाप देते है । अपराध नाही जानते तिनको शाप देने में फायदा नहीं ।

दुर्वास ने अपराधीओं को नहीं शाप दिया, तो अपराध जान के निवृत्त नाहीं भये तिन को शाप दिया । अपराध जान के निवृत्त नहीं होते, तिन को महात्मा पुरुष शाप देते है । इस वास्ते कौरव जन के पहिले तेरा हनन होवे तो मैं संतुष्ट होऊं और जो ऐसा तेरा आग्रह होवेगा कि ये मेरे बांधव है, तो आग्रह मन से ही पकडा हुवा है । **मनोमात्र संसार निवृत्त करने में सुलभ है ।** गाँजा, दारू का शरीर में असर रहता है- बोय रहती है, तातें वे निवृत्त करने में कठिन है, किंतु ये मेरे बांधव है, पिता है इस का मन के ही ऊपर असर रहता है, शरीर के ऊपर सींग फुटता नहीं । हे पार्थ! मन के ऊपर असर हुवा तिसको तू निवृत्त नहीं करता तो शरीर पर होने हारे असर को क्या निवृत्त करेगा ? मैं तो तीन दिन से कह

रहा हूँ कि इस बात का मनन जो कोई नहीं करेगा उस को मैं जम (यम) के हाथ में देऊंगा ।

तो यह मेरा निरूपण अवश्यमेव मननीय है । मनन करे सिवाय कोई भी लाभ नहीं उठावेगा । भला, तो शरीर से कोई किसी को बाँधेगा तो वह जल्दी नहीं बाँधा जायगा किंतु मन ने बंधा हुवा बालक से भी मारा जाता! कैसा? व्याघ्रादिकनको बंधन करे तो बंधन मैं रहते है, वरन् जिस समय छोड देवे उसी वख्त चले जाते है वैसी इस पुरुष को दारा पुत्रादिकोंने सखली नहीं लगाई है, परंतु मनतें बांधे है, जैसा नचावे वैसे नाचते है, बालक से भी जिता जावे । काहे ते? मनतें बँधा हुवा बलवान हो कर शक्ति भी रहती, वरन् (बंधनसे) निकलता नहीं । पुत्र, दारादिक इस को फँसाते है तो यह उनका अपराध नहीं है । वे ऐसे नहीं कहते है कि, हम तेरे को बाँध के रखते है । तू ही अपना लक्ष उन के हाथ देता है !

जो तू कहेगा कि 'मैं काम क्रोध से बँधा हूँ' तो तेरी स्वप्न भोग से या मुष्टि मैथुन से भी तृप्ति हो सकती है! तू कहेगा 'मरने के समय मुझे जल कौन देवेगा?' तो मरने के समय तेरा ही कंठ बंद हुवा तो पुत्र, दारादिक क्या झाँट उखाडेंगे? मरने के विषय में सावध तू ही रहा तो (जल) लेवेगा- नहीं रहा तो प्रयोजन नहीं। तातें बांधवादिक शोक के विषय मैं समर्थ नहीं है ।

हे पार्थ! जो तेरे को काम भोगने की इच्छा से स्त्री चाहिये तो सपने में स्त्री से काम भोग करने से वीर्य पतन नहीं होवेगा? फिर काहे को दारा मिलाने के वास्ते यत्न करता है? नहीं भी वैराग्य होवे तो शोक करने की जरूरत नहीं है । याकारणतें भी पुत्रदारा की चिंता करने का प्रयोजन नहीं है । तू निःशेष करिके शोक को त्याग कर और इस शोक का त्याग तेरे को इतना सुलभ है, जैसे तेरे को इन बांधवोंके विषय में शोक होता है तैसे तेरे विषय में उन को शोक नहीं होता है । अब व्यवहार दृष्टि से भी ये बांधव तेरे को अनुकूल नहीं है, अनयास प्रतिकूल है- त्याग करने का प्रयोजन ही रहा नहीं । तात्पर्य :- सब ओरसे विचार करने से तेरा शोक करना व्यर्थ ही होता है। इस वास्ते शोक छोरिके युद्ध करनाही तेरेको योग्य है । अब अजातवाद आगामी श्लोक में कहेंगे ।

॥ श्री ज्ञानेश्वर महाराजार्पणमस्तु ॥

१२

॥ श्रीज्ञानेश्वर माउली समर्थ ॥

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगामापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥१४-२॥

परम अधिकारी

कल मैं ने कहा था कि, जो पुरुष इस संसार में बहुत दुःख है ऐसा जान करिके -

कुछ भी होवे संसार नहीं करूँगा, फलवा होवे या न होवे, मुक्ति मिले या न मिले; या समाधान वृत्ति से संसार छोड के ज्ञान प्राप्त करने के वास्ते प्रयत्न करता है सो ही इस ज्ञान मार्ग में परम अधिकारी कहा जाता है ।

फेरि श्रीकृष्ण भगवान् कहते भये - हे पार्थ! अन्वय-व्यतिरेक से भी जो देखे तो विषय का सुख देना स्वभाव नहीं है । संसार में जो सुख नहीं तो संसार क्यों करे? ऐसा ही विचार वैराग्य स्थिर रखने के वास्ते अच्छा है ।

जहाँ जहाँ विषय हो वहाँ वहाँ सुख रहता है ये कोई नियम नहीं है, जो चित्त कोई चिन्ता में मग्न हो तो विषय भोग हो कर भी तृप्ति नहीं होवे है और जहाँ विषय नहीं है वहाँ सुख नहीं है ऐसा भी कोई नियम नहीं है; काहे तें, सुषुप्ति में विषयनका अभाव हो कर भी सुख प्रतीत होवे है । जो वहाँ सुख प्रतीति न होती तो निद्रा की प्रवृत्ति न होनी चाहिये । इस रीति से विषय का सुख देना ये कुछ गुण नहीं है । इस वास्ते ये बांधव के वास्ते शोक करना उचित नहीं । और पार्थ! तू कैसा है? तेरा नाम कौंतेय है । कौंतेय नाम कुंतिपुत्र है । अर्थात् कुंती के समान तूं सुशील है । कुंति नाम निर्देश करने से अर्जुनजी का स्वभाव सुशील था ये दिखलाया गया । ऐसी स्मृति है:-

पुण्यवान

सुशीलो मातृपुण्येन, पितृपुण्येन चातुरः ।
दातृत्वं वंशपुण्येन, आत्मपुण्यात्सभाग्यता ॥

जिसकी माता सुशील होवे है वह भी सुशील होवे है । पिता बुद्धिमान् होवे तो लडका भी बुद्धिमान् होवे है । वंश में दानशूर होवे तो उस के पुत्र, पौत्र भी

दानशूर निकसे है, और अपने पुण्य से भाग्यवान् निकसे है ।

यहाँ अर्जुन के विषय में मातृपक्ष से उत्तमता दिखलाई है और :-

दोषी

''उन्मत्तो मातृदोषेण, पितृदोषेण मूर्खता ।
अदत्तो वंशदोषेण, आत्मदोषात् दरिद्रता ।।

माता जो पापी होवे तो पुत्र भी उन्मत्त निकसे है । पिता के दोष से पुत्र मंद बुद्धि निकसे है । वंश में कोई कृपण रहे तो फेर उस के पुत्र भी कृपण रहे है और अपने ही दोष तें दरिद्री होवे है ।

यहाँ ये शंका उद्‌भूत होने का संभव है कि, दूसरे के कर्म का फल तिसरे को कैसा होवे है? ऐसा जो होता नहीं तो, माता के या पिता के कर्म से पुत्र उत्तम या दुर्गुणी निकसता है, ये कहने का क्या मतलब है?

ये शंका बने नहीं, काहे तें ? उदाहरणार्थ- रसोइया रसोई पकाता है तो सब सामान अपना ही रहे है और कुशलता उस की रहे है, और रसोई का भोग अपने को होवे है; तैसा अपने जो कर्म प्रबल होवे तो माता पितर के कर्म कुछ नहीं कर सकते है, और अपने कर्म जो दुर्बल रहे तो अपने कर्म को सहाय्य होवे है । एवं जिनके माता-पिता दुर्गुणी रहते है, वे भी दुर्गुणी रहते है ।

पुत्र जो दुर्गुणी उपजा जो जानि लेना कि इसके पिता ने या माता ने कुछ तो भी दोष किये थे ।

समर्थ तुकाराम महाराज कहते हैः-

झविली महारें, त्याची व्याली असे पोरे ।।१।।
करी संतांचा मत्सर, कोपें उभारुनि कर ।।२।।
बीज तैसें फळ, वरी आलें अमंगळ ।।३।।
तुका म्हणे ठावें, ऐसे झाले अनुभवे ।।४।।

जो साधु का मत्सर करता है वे निश्चय करि नीच पुरुष के वीर्य से उत्पन्न हुवा ऐसा जानि लेना । कोई ब्राह्मण शंका मन में पकडके तुकाराम महाराज के कीर्तन को आया था । उस समय का ये अभंग है ।

भगवान कहते भये - हे पार्थ! तेरी माता निर्दोषी है, इस वास्ते तू सुशील

है । शोक करना उचित नाहीं । कोई कहेंगे कि पांडवनकी उत्पत्ति वीर्य तें नहीं है, मंत्र से है । ये कुछ उत्तम माता का लक्षण नहीं है । ये शंका बने नहीं । देवताओं का जन्म वीर्यतें नहीं होता है । भावना मात्रही वे जन्म लेते है । भागवत में श्रीधरस्वामी कहते है कि –

''जीवानामिव न धातुसंबंधमित्यर्थः''

परंतु जब जीवरूप से देवता जन्म लेते है तब उन की उत्पत्ति वीर्यतेंही होवे है । तूं सुशील है करिके शोक नहीं करना । सुशील पुरुष धैर्यवान रहते है । इंद्रियनसे जिन का भोग होवे है, ऐसे ये विषय सुख देनेवाले नहीं है । इनसे जो सुख दुःख प्रतीत होवे है उस को तूं ने सहन करना चाहिये । ये सुख दुःख आगम और अपायी है । ये जब आते है तब से ही इनका भोग शुरु होता है । यहाँ एक विशेष है । दुःख त्रिविध है :-

(१) आध्यात्मिक - अपने से ही अपने को होनेवाला ।
(२) आधिभौतिक - इतर प्राणियों से होनेवाला ।
(३) आधिदैविक - इस जन्म में ग्रहादिकों से और मरे बात यमयातना, इनको आधिदैविक कहे है ।

यहाँ दुःख सहन करने के वास्ते कहा है । इस में थोडा विवेक है । **मैं देह हूँ ऐसा जो मानता है उसी को दुःख होवे है ।** ये दुःखनकी अत्यंत निवृत्ति याने मोक्ष ऐसा सांख्य मानते है । यह सांख्य योग इस अध्याय में कहा है । परंतु परमानंदप्राप्ति वेदान्त सिवाय कभी होने की नहीं । सांख्य मत में तिन्हों भी दुःख की अत्यंत निवृत्ति अपेक्षीत नहीं परंतु इन का भोग नहीं होना चाहिये । ये सुखदुःख धर्म प्रवृत्ति के है और वे प्रकृति सत्य मानते है । कार्य भी सत्य मानते है तो भी कार्य कभी प्रगट, कभी लीन परंतु कारण दशा में नित्य है । किसी का अभाव नहीं है। कोई डबे में एक ठो पदार्थ धर दिये और ढक्कन लगाये तो पदार्थ छुप जाता है; तद्वत् प्रकृति में कार्य लीन होता है । उस कार्य को योगी देख सकते है । इस सांख्य मत में दुःखनिवृत्ति इष्ट है परंतु बनती नहीं । दुःख रहे तो भी पर्वा नहीं; परंतु अपने को नहीं होना चाहिये ऐसा कहना सम्यक् नहीं ।

काहेतें? प्रकृति सत्य माने तो सुखदुःख उसके धर्म भी सत्य भये।

अब हम यह पूछे कि, दुःख का स्वभाव दुःखरूप है या बदलते रहता है? प्रथम पक्षीं निवृत्ति बनती नहीं। दुःख का स्वभाव दुःखरूप कहे तो किसी को तो भी दुःख होवेगाही और उस का ज्ञान पुरुष को, रहना चाहिये। फिर निवृत्ति बन नहीं सकती। इस वास्ते सांख्य से दुःख की अत्यंत निवृत्ति बने नहीं। दुःखनिवृत्ति के वास्ते दुःख मिथ्या है ऐसा जानना चाहिये और ये काम वेदान्त सिवाय किसी से बन नहीं सकता।

जो दुःख भोगा जाता है उसकी निवृत्ति करने की जरूरत नहीं। जो आगामी दुःख है उस की ही निवृत्ति करना चाहिये।

योगसूत्र में भी ऐसा ही कहा है :- **'' हेयं दुःखमनागतम्''**

उदाहरणार्थ :- कल डर मालूम हुवा। मालूम हो गये बाद उस की चर्चा करने में क्या अर्थ है? आगे डर न प्राप्त हो इस के वास्ते प्रयत्न करना चाहिये। मरण और जनन ये आगे प्राप्त होनेवाले दुःख है। इन की निवृत्ति ज्ञान से बने है।

प्राप्त हुये दुःख का भोगही करना चाहिये , और वह सहन करना चाहये। आज बुखार आया। अब यह ज्वर भोगने बिना दूसरा उपाय नहीं किंतु दूसरे दिन भी न आना चाहिये, इस वास्ते औषध लेना पडेगा।

इस वास्ते -

प्राप्त दुःख सहन करना।

आगामी दुःख के नाश का प्रयत्न करना।

और

भुक्त दुःख का शोक नहीं करना।

जिस को सुखदुःख बाधा नहीं कर सकते,

वहीं पुरुष मुक्त है।.....

॥ समाप्त ॥

संत श्री गुलाबराव महाराज की विषयानुसार रचनाएं

(सर्व ग्रंथ २० खंड याने ''सूक्तिरत्नावली यष्टी'' के अंतर्गत है, इसलिए य१ / य१३ इसप्रकार प्रत्येक ग्रंथ के सामने लिखा है; यह ध्यानमें रखना आवश्यक है)

सूत्रग्रंथ - (१) अन्तर्विज्ञानसंहिता(सं) य१६ (२) ईश्वरदर्शनम् (सं) य१६ (३) समसूत्री (सं) य१६ (४) दुर्गातत्त्वम् (सं) य१६ (५) काव्यसूत्रसंहिता (सं) य१६ (६) शिशु-व्याकरणम्(सं) य१६ (७) न्यायसूत्राणि (सं) य१६ (८) एकादशीनिर्णयः (सं) य१६ (९) पुराणमीमांसा (सं) य१६

आकर ग्रंथ - (१०) संप्रदायसुरतरु य११

भाष्यग्रंथ - (११) नारदीयभक्त्यधिकरण न्यायमाला (सं) य१६ (१२) भक्तिभाष्यम् (सं) य १६ (१३) भक्तिभाष्यम् (सं) य १५ (१४) प्रियलीलामहोत्सव (भागवत) निमंत्रणविलास य ३(१५) प्रियलीलामहोत्सव आमंत्रणविलास, आगमनविलास य३ (१६) श्रीधरोच्छिष्टपुष्टिः(सं) य१६ (१७) श्रीधरोच्छिष्टपुष्टिलेशः(सं) य१६ (१८) ब्रह्मसूत्रव्याख्या य१५ (१९) निगमांतसुधा य१५ (२०) ब्रह्मसूत्रांवर निरूपण य१८ (२१) भगवद्गीतासंगति य१(२२) मनोहारिणी (हिन्दी) य१८ (२३) गीतेवरील निरूपणे य१७ (२४) गीतेवरील प्रवचने य१७ (२५) गीता निरूपणे य१८ (२६) गीता स्फुट निरूपणे य१८ (२७) ऐश्वर्यार्थदीपिका- ईश्वरगीता य१५ (२८) षट्पद्ध्वनिः (सं) य१६ (२९) ईशावास्योपनिषद् (सं) य१६ (३०) ऋग्वेदटिप्पणी (सं)य१६ (३१) अमृ.चौसष्टी य१ (३२) चिरंजीवपदाभ्यास य२ (३३)बालवासिष्ठ(सं) य१६ (३४) योगवासिष्ठतत्त्व य१७ (३५)योगवासिष्ठ(म) य१८

शास्त्रीय ग्रंथ - (३६) सुखवरसुधा य१३ (३७) वेदान्तपदार्थद्वैशदीपिका य१३ (३८) शास्त्रसमन्वयः (सं) य१६ (३९) आगमदीपिका (सं) य१६ (४०) युक्तितत्त्वानुशासनम् (सं) य१६ (४१) प्रेमनिकुंज य१० (४२) शांतिसुधाकर य२ (४३) वेदान्तप्रक्रियासमुच्चय य१५ (४४) वेदान्तनिरूपण य१५ (४५) तत्त्वबोधः (सं) य१६ (४६) षड्दर्शनलेशसंग्रहः (सं) य१६

भक्तिग्रंथ - (४७) भक्तिपदतीर्थामृत - 'तत्त्वमसि' महावाक्यविरण य१ (४८) निगमांतपथसंदीपक य१(४९) भगवद्भक्तिसौरभ य२ (५०) प्रीतिनर्तन य२ (५१) नित्यतीर्थ य२ (५२) प्रिय पाहुणेर य२ (५३) भक्तितत्त्वविवेक (सं) य१६ (५४) प्रियप्रेमोन्माद (सं) य१६ (५५) गोपिकापादपीयूषलहरी य१५ (५६) गोविंदानंदसुधा (सं) य२

योग - (५७) निदिध्यासनप्रकाश य १ (५८) ध्यानयोगदिवाकर य२ (५९) सोपानसिद्धि य२ (६०) हिरण्ययोग (स्वप्न)य१५ (६१) योगांगयमलक्षण य१५ (६२) योगप्रभाव (पद्य) य१५ (६३) योगप्रभाव (गद्य) य१९ (६४) ज्ञाने. कुंडलिनी.य१५

सांख्य - (६५) सांख्यसुरेंद्र य१४ (६६) सांख्यतत्त्व सूत्र य१५ (६७) सांख्यसार निबंध य१५ (६८) सांख्यसार य१८

संगीत - (६९) छंद प्रदीप य१५ (७०) गानसोपान य१५

आयुर्वेद - (७१) मानसायुर्वेद (सं) य१६ (७२) मानसायुर्वेद (म) य१५ (७३) भिषगिंद्रशचीप्रभा (सं)य१६ (७४) वैद्यवृंदावन (म)य१५

प्रकरणग्रंथ - (७५) स्वमतनिर्णयः(सं)य१६ (७६) संप्रदायकुसुममधु(सं) य१६ (७७) सृन्निर्णयः(सं) य१ (७८) कांतकांतावाक्यपुष्पम् (सं)य२ (७९) चित्तोपदेश य२ (८०) सद्वैजयंती य२ (८१) बाराखडी य२ (८२) त्रिकांडसार य२ (८३) प्रमादकल्लोळ य१५

गाथा - (८४) अभंगांची गाथा य९ (८५) पदांची गाथा य९

निबंध - (८६) अलौकिक प्रवास य२ (८७) अमोघनिरूपण य२ (८८) बौद्ध निबंध य१५ (८९) वेदान्तनिरूपण य१५ (९०) सिद्धिसार य१५ (९१) अलौ.व्याख्यानमाला य५ (९२) युक्त्या य१७ (९३) गुरुचरणकौमुदी य१८ (९४) निरूपण य१७

संवाद व वचनामृत - (९५) साधुबोध य८ (९६) मणिमंजुषा य१२ (९७) सुवर्णकण य१७ (९८) स्वमंतव्यांशसिद्धान्ततुषार य६ (९९) दुर्महृदयभंजन य१५ (१००) प्रश्नोत्तरे य१५ (१०१) वृत्तिक्षीरसागर य१५ (१०२) बालबुद्धिविवर्धिनी य१७

पत्रे, निबंध व समीक्षा (११८) - (१०३) अकरा पत्रे य१ (१०४) वीस पत्रे य२ (१०५) अडतीस पत्रे य७ (१०६) सत्तेचाळीस पत्रे य१२ १०७. एकपत्र य१५

लोकगीते, स्तोत्रे - (१०८) स्त्रीगीते य४ (१०९) स्त्रगीतसंग्रह य४ (११०).तुंबडी य२ (१११) रुक्मिणी स्वयंवर य९ (११२) रुक्मिणीपत्रिका य९ (११३.मातृपितृभावनाष्टक य२ (११४) कृष्णपंचपदी य२ (११५) गुरुपंचपदी य२

आत्मकथन व आख्याने - (११६) आत्मचरित्र य१५ (११७)सूचना प्रकरण य१ (११८) सूचना प्रकरण य२ (११९) अभंग१९ आख्या.य९ (१२०).पदे ७ आख्याने य९ (१२१) पतिव्रताचरितामृत य१५

विविधरचना - (१२२) सुखपर्व (नाटक) य१५ (१२३) मात्रामृतपानम् (सं) य१६ (१२४) पत्नीप्रेमपराग य१५ (१२५) नवीनभाषा 'नावंग' य१६ (१२६).शब्दकोष य१५ (१२७) सांकेतिक लघुलिपी य १५ (१२८) मोक्षपट (क्रीडा) य१५ (१२९) हरिपाठ- प्रतिज्ञा य१५ (१३०) हरिपाठ-अर्थक्रम य१५ (१३१) मायर्स समीक्षा य१५ (१३२) शिक्षणरत्नाकर-नाही (१३३) ज्ञानबोध अभंग य९पू.(१३४) गायत्री-अन्वयार्थ य१

०००

भक्तराज ज्ञानेश्वरकन्या श्रीगुलाबरावजी महाराज मोहोड

परिचय लेखक :- श्री. रामनारायणजी श्रीवास्तव

(कल्याण भक्त-चरितांक इ.स.१९५२)

श्रीगुलाबरावजी महाराज रसिक भक्त, विरक्त और ज्ञानी महात्मा थे। विक्रम संवत् १९३९ (इ..स.१८८१) में बरार प्रदेशके अमरावती जनपदके लोणी टाकली गाँवमें उनका जन्म हुआ था । वे माधान ग्राम के निवासी थे । वे राजपूत थे ।

उन में बाल्यावस्थासेही भगवद्भक्ति के लक्षण दीख पडने लगे। जब वे चार ही सालके थे, एक रातको उनके बिस्तरेपर दीप उलटकर गिर पडा; उन्होंने अपनी नानीसे कहा कि 'बिस्तरा नहीं जलेगा, तेल जल जायेगा' भगवान की कृपासे ऐसा ही हुआ । कभी बचपनमें ही भगवान ने उनको दर्शन दिया था । वे प्रज्ञाचक्षु थे ।

ग्यारह सालकी अवस्थामें उनका विवाह हो गया । उनकी पत्नी मणिकर्णिका बडी सती और साध्वी थी । उनके एक अनन्तराव नामक पुत्र भी है । विवाहके १३ साल बाद उनकी पत्नीने स्वर्ग - यात्रा की। गुलाबरावजी महाराज ने समस्त शास्त्रग्रन्थों, ज्ञानेश्वरी, महाभारत, रामायण आदिका मनन और अध्ययन किया । भगवद्भक्ति के प्रति उनमें प्रबल जिज्ञासा थी । आगे चलकर उनमें ज्ञान, भक्ति और कर्मका बडा सुन्दर समन्वय हुआ था।

पूनासे १३ मीलकी दूरीपर आलन्दी क्षेत्रमें उन्हें संत ज्ञानेश्वर का साक्षात्कार हुआ था । उन्होंने कृपापूर्वक गुलाबरावजीको दीक्षित कर सनातनधर्म और भगवद्भक्तिप्रचारका आदेश दिया । उनकी उपासना गोपीभावकी थी । भगवान् श्रीकृष्ण और रासलीलामें उनकी दृढ निष्ठा थी । जिस समय वे बोलने लगते थे, भक्तिप्रेमामृतकी मानो गङ्गा प्रवाहित हो उठती थी; जिस समय मधुर कण्ठसे भगवन्नामकीर्तन करने लगते थे, मधुर रसका सागर उमड पडता था । ज्ञानेश्वरीके कथाश्रवणसे नास्तिककी बुद्धि बदल जाती थी और वह उनकी कृपासे भगवान्का भक्त हो जाता था।

वे कहा करते थे कि जीवन्मुक्ति प्राप्त करने के लिये भक्ति ही विशिष्टतम साधन है। उनका मत **'मधुराद्वैतदर्शन'** नामसे विख्यात है। यह दर्शन अत्यन्त सरस और मधुर है।

उन्होंने सम्प्रदायसुरतरू, प्रेमनिकुञ्ज, भक्तिपदतीर्थामृत आदि अनेक ग्रन्थोंकी *(१३४ ग्रंथ)* रचना की थी । संवत् १९७३ में (इ.स.१९१५) उन्होंने शरीर छोड दिया ।

प्रस्तुत ग्रंथ उनके द्वारा जो प्रसंगोपात्त प्रवचन दिए गए है उनका ही एक संकलन है। श्रीमद्भगवद्गीता के तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन जनता की बोली में, सारांश में, किन्तु तर्क को किसी भी प्रकारकी हानि न पहुंचाते हुए सोदाहारण उन्होंने किया है। अल्पबुद्धि विद्यार्थी को गुरु जिस प्रकार अनेक उदाहरण देकर प्रतिपाद्य विषय समझाने का यत्न करते है उसी प्रकार श्रीमहाराज ने भी श्रीमद्भगवद्गीता जैसे कठिन ग्रन्थ के तत्त्वज्ञान को समझाने का यत्न किया है।

वर्तमान युग बुद्धिवाद का युग कहलाया जाता है। भौतिक सृष्टि में अनेक अन्वेषणों से जो विविध चमत्कार निर्माण करने की कुंजी आज मनुष्य को प्राप्त हुई है, उसी के कारण मनुष्य को यह भ्रान्ति हो रही है कि वह सृष्टि का निर्माता है। सृष्टि के आदि कारण ईश्वर नाम की कोई अपरिचित और विज्ञान के क्षेत्र में न आनेवाली किसी सर्वशक्ति वस्तु को मानने की कोई आवश्यकता उन्हें प्रतीत नहीं होती । श्रीमहाराजने इस ग्रन्थके सातवे व्याख्यान में इस धारणा का सोदाहरण ओर तर्कपूर्ण खंडन कर ईश्वर की सिद्धि की है जो आज के तथा कथित बुद्धिवादियों के तर्क को चुनौती दे सकती है। श्री महाराज द्वारा निर्मित अन्य ग्रन्थों में डार्विन तथा स्पेन्सर इत्यादि अनेक पाश्चिमात्य तत्त्वज्ञानियों का सविस्तर तथा सोपपत्तिक खंडन आया है जिसका हिन्दी जनता के लिए हिन्दी में अनुवाद होना आवश्यक है।

श्रीमहाराज के ग्रन्थों की विशेषता यह है कि उनमें किसी भी प्रकार की कटुता को स्थान नहीं दिया गया है । जहां तक संभव हो, सभी विरोधियों को यथोचित गौरवपूर्ण स्थान दे कर उनके सिद्धान्तों का समन्वय करने का यत्न किया है। तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में अद्वैत ज्ञान और भक्ति जैसे आपाततः विरोधी प्रतीत होनेवाले सिद्धान्तों का समन्वय कर दोनों सिद्धान्तों के समर्थकों का विरोध उन्होंने नष्ट किया है और बिना अद्वैतज्ञान, यथार्थभक्ति का होना संभव नहीं इस सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त का प्रतिपादन अपने सभी ग्रन्थों में उन्होंने किया ।

आर्थिक कठिनाइयों के कारण यह काम आज तक नहीं हो पाया किन्तु उदार धनिक लोग इस की ओर अपना ध्यान देने का कष्ट करेंगें तो ग्रंथ प्रकाशन का सुदिन आना असंभव नहीं है। मनोहारिणी पढने के बाद इस प्रकार की प्रेरणा भगवान उन्हें अवश्य देगा ऐसा हमें पूरा विश्वास है ।

।।श्रीमत्सद्गुरुज्ञानेश्वर महाराजार्पणमस्तु ।।

०००